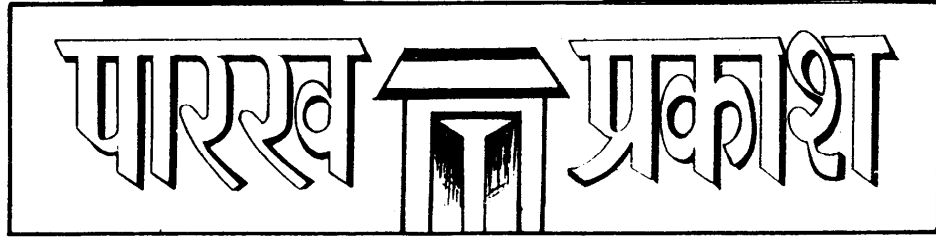
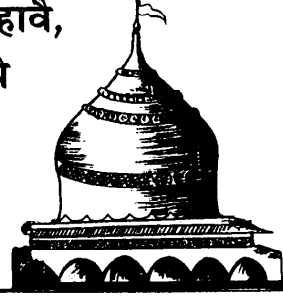
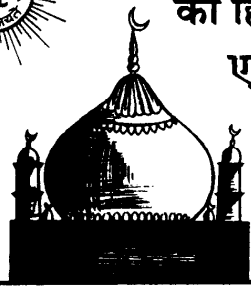




सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर



सब ते साँचा भला, जो साँचा दिल होय।
साँच बिना सुख नाहिना, कोटि करे जो कोय॥ बीजक, साखी 64 ॥

वर्ष 45]

इलाहाबाद, आश्विन, वि० सं० 2072, अक्टूबर 2015, सत्कबीराब्द 617

[अंक 2

अवधू अंधाधुंध अंधियारा ॥ टेक ॥

या घट अंतर बाग बगीचा, याही में सिरजनहारा ॥ 1 ॥
या घट अंतर सात समुंदर, याही में नौ लख तारा ॥ 2 ॥
या घट अंतर हीरा मोती, याही में परखनहारा ॥ 3 ॥
या घट अंतर अनहद गरजे, याही में उठत फुहारा ॥ 4 ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, याही में गुरू हमारा ॥ 5 ॥

x

x

x

मोर हीरा हेराइगा कचरे माँ ॥ टेक ॥

कोई ढूँढे पूरब कोई ढूँढे पश्चिम, कोई ढूँढे पानी पथरे माँ ॥ 1 ॥
पाँच पचीस तीन के भीतर, लाग रहे बहु फिकरे माँ ॥ 2 ॥
सुर नर मुनि यति पीर औलिया, उरझ रहे बहु नखरे माँ ॥ 3 ॥
कहैं कबीर परख जिन पाया, बाँध लियो है अँचरे माँ ॥ 4 ॥

पारख प्रकाश

आप आस्तिक हैं या.....?

व्यावहारिक एवं सामाजिक दृष्टि से मैं अपने को एक मनुष्य मानता हूँ। मैं देखता हूँ कि मेरे समान अन्य भी मनुष्य हैं, उनके प्रति प्रेम, एकता, समता का व्यवहार करना मैं मनुष्य मात्र का कर्तव्य समझता हूँ। मैं यह समझता हूँ कि मैं यदि किसी की सेवा नहीं कर सकता तो कम से कम कोई ऐसा काम तो न करूँ जिससे दूसरों को तकलीफ हो। धार्मिक दृष्टि से मैं अपने को संत कबीर का अनुयायी मानता हूँ और उनके मानवता तथा अध्यात्मपरक उपदेशों को अपने जीवन में यथाशक्ति आचरित करते हुए उनका प्रचार-प्रसार करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। आध्यात्मिक दृष्टि से मैं अपने को शरीर से सर्वथा भिन्न चेतन-जीव मानता हूँ और इस मनुष्य शरीर में रहते हुए शरीर-संसार की आसक्ति एवं विषय-वासना का त्यागकर स्वरूपस्थिति करना जीवन लक्ष्य मानता हूँ तथा उसके लिए सेवा, संयम, शील, सदाचार, नैतिकता का पालन एवं आचरण आवश्यक मानता हूँ। किन्तु मैं आस्तिक हूँ या नास्तिक यह मैं नहीं जानता। सच तो यह है कि मैंने कभी यह जानने की कोशिश ही नहीं कि मैं आस्तिक हूँ या नास्तिक। लेकिन कुछ दिनों से मैं इस संदेह एवं उलझन में पड़ गया हूँ कि मैं अपने को आस्तिक मानूँ या नास्तिक।

कारण यह है कि कुछ दिन पूर्व एक धार्मिक कहे जाने वाले व्यक्ति से मुलाकात होने पर बातचीत के दौरान उन्होंने मुझसे पूछा कि आप आस्तिक हैं या नास्तिक? उनके इस प्रश्न ने मुझे उलझन में डाल दिया और सोचने को मजबूर कर दिया। मुझे कुछ समझ में नहीं आया कि मैं उनको क्या उत्तर दूँ। हारकर मैंने उनसे ही पूछा—पहले आप यह बतायें कि आस्तिक और नास्तिक की परिभाषा क्या है, तब मैं आपको बता सकूँगा कि मैं आस्तिक हूँ या नास्तिक। उन्होंने कहा—

‘जो ईश्वर और परलोक की सत्ता में विश्वास करते हैं तथा वेदों को ईश्वरकृत एवं स्वतः प्रमाण मानते हैं वे आस्तिक हैं। इसके विपरीत जो ईश्वर और परलोक की सत्ता में विश्वास नहीं करते तथा वेदों को स्वतः प्रमाण नहीं मानते वे नास्तिक हैं।’ मैंने उनसे कहा कि मैं यह तो मानता हूँ कि हर जीव को अपने किये कर्मों का फल भोगना पड़ता है तथा अपने कर्मानुसार जीव नाना योनियों में शरीर धारण करता है, किन्तु कोई ऐसा ईश्वर है जो सृष्टि रचयिता और जीवों को कर्मफल भोग देने वाला है उस पर मेरा विश्वास नहीं है। मैं वेद तथा अन्य धर्मग्रन्थों को ऋषियों-मुनियों-महापुरुषों की रचना मानता हूँ, उन्हें आदर देता हूँ परन्तु मैं किसी भी धर्मग्रन्थ को चाहे उसका नाम वेद हो या अन्य स्वतः प्रमाण नहीं मानता। मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा—तब तो आप पक्के नास्तिक हैं।

चूँकि वे एक धार्मिक व्यक्ति थे और उन्होंने मुझे नास्तिक कहा था इसलिए मुझे मानना पड़ा कि मैं नास्तिक हूँ। उनके ऐसा कहने के कई दिन बाद तक मैं इस विषय में सोचता रहा कि मैं अपने को आस्तिक मानूँ या नास्तिक। अंत में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि सचमुच मैं नास्तिक हूँ। मेरे नास्तिक होने के कई कारण हैं। कुछ कारण मैं यहाँ बता दूँ—

मैं दुनिया की किसी पुस्तक को चाहे उसका नाम वेद हो या अन्य कुछ ईश्वरकृत, ईश्वरीय, अपौरुषेय तथा स्वतः प्रमाण नहीं मानता, किन्तु मैं यह मानता हूँ कि दुनिया की सभी पुस्तकें, सभी धर्मग्रंथ मनुष्यकृत हैं, जो भिन्न देश-काल-परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न महापुरुषों द्वारा लिखी गयी हैं। उन पुस्तकों-धर्मग्रंथों में कुछ शाश्वत सत्य की बातें हैं तो कुछ समसामयिक रीति-रिवाज-कर्मकांड आदि की बातें हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम सभी पुस्तकों-धर्मग्रंथों को आदर दें, श्रद्धापूर्वक उनका पठन-पाठन करें। उनमें जो सार-सत्य हैं उनको ग्रहण कर उनका आचरण करें। किन्तु उनमें जो गलत लगे उनको छोड़ दें। हमारा कल्याण किसी पुस्तक-धर्मग्रंथ को ईश्वरकृत, ईश्वरीय वाणी, अपौरुषेय एवं स्वतः प्रमाण मानने से नहीं होगा, किन्तु उनमें वर्णित सार-सत्य बातों के आचरण से होगा।

इसलिए हमें नीर-क्षीर विवेकी बनकर सबसे सार-सत्य को ग्रहण करना चाहिए।

वेदों में यह कहीं नहीं कहा गया है कि वेद ईश्वर प्रणीत अपौरुषेय या स्वतः प्रमाण है और वेदों को स्वतः प्रमाण न मानने वाला नास्तिक है। वेदों के तो हर सूक्त के प्रारंभ में मंत्र रचयिता ऋषि का नाम है, साथ ही उस देवता का भी जिसकी प्रार्थना में उस सूक्त के मंत्रों की रचना हुई है। वेदमंत्रों के रचयिता ऋषि एक नहीं अनेक हैं तथा ऋषिगण समय-समय पर नये-नये मंत्रों की रचना करते रहे हैं जिसका प्रमाण स्वयं ऋग्वेद के मंत्र हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया ।

(ऋग्वेद 4-16-21, 4-19-11)

युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।

(ऋग्वेद 6-8-5)

नव्यसा वचसा विवासे ।

(ऋग्वेद 6-62-5)

अर्थात्—“हे अश्व वाले इंद्र! हम तुम्हारी स्तुति में अपनी बुद्धि से नये मंत्र बनाते हैं।”

“हे अग्ने! समय-समय पर यज्ञ में नये-नये मंत्रों का गायन करने वाले स्तोताओं को धन और यशस्वी पुत्र दो।”

“नवीन मंत्र से पूर्ण संतुष्ट करता हूँ।”

इस प्रकार के मंत्र ऋग्वेद में और भी हैं, जिनसे पता चलता है कि ऋषिगण समय-समय पर नये-नये मंत्र बनाते रहते थे, तब यह कैसे मान लिया जाये कि वेद ईश्वरकृत और स्वतः प्रमाण हैं। स्वयं ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं कि किसी बात को आंख मूंदकर न मानो किन्तु विवेक करके छान करके मानो। ऋषि का वचन है—

*सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥*

(ऋग्वेद 10-71-2)

अर्थात् जैसे सत्तू को चलनी से छानकर पवित्र कर लिया जाता है, वैसे जहां विवेकवान मन द्वारा वाणी को शुद्ध करके बोलते हैं, वहां मित्र मित्रता के भेद को

जानते हैं और वहीं कल्याणकारी लक्ष्मी निवास करती है।

यही बात सद्गुरु कबीर कहते हैं—

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय ।

सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥

सब काहू का लीजिये, साँचा शब्द निहार ।

पच्छपात न कीजिये, कहैं कबीर विचार ॥

इस प्रकार मैं सभी पुस्तकों-धर्मग्रंथों का आदर करता हूँ, उनका अध्ययन करता हूँ, उनसे सार-सत्य ग्रहण करने को तैयार रहता हूँ, किन्तु मैं वेद या किसी अन्य पुस्तक को ईश्वरीय, अपौरुषेय एवं स्वतः प्रमाण नहीं मानता, इसलिए लोग मुझे नास्तिक कहते हैं।

मैं दुनिया के सभी महापुरुषों, संतों, मुनियों, मत-प्रवर्तकों के प्रति पूज्य भाव रखता हूँ, उन्हें श्रद्धेय मानकर उनके बताये मार्ग पर चलने की कोशिश करता हूँ, किन्तु उनकी वाणियों को आंख मूंदकर स्वीकार नहीं करता। मैं उन पर विचार करता हूँ और उनमें जो सही लगता है उसे मान लेता हूँ जो नहीं लगता उसे छोड़ देता हूँ। मैं यह समझता और मानता हूँ कि केवल श्रद्धा से सत्य का शोधन और निरूपण नहीं होता, किन्तु श्रद्धा के साथ तर्क-बुद्धि का नियोजन होने पर सत्य का शोधन और निरूपण होता है। इसलिए मैं श्रद्धा के नाम पर तर्क-बुद्धि की बलि नहीं चढ़ाता। मैं महाकवि कालिदास के इस कथन से सहमत हूँ कि “कोई बात पुरानी होने मात्र से सत्य और ग्राह्य नहीं हो जाती और न कोई बात नवीन होने मात्र से गलत एवं त्याज्य हो जाती है। विवेकवान परीक्षा करने के उपरांत ग्रहण-त्याग करते हैं, किन्तु मूढ़-विश्वासी व्यक्ति आंख मूंदकर मान लेता है।”¹ मैं आंख मूंदकर विश्वासपूर्वक नहीं चलना चाहता किन्तु मैं विवेक-बुद्धि का प्रयोग करना चाहता हूँ। इसलिए लोग मुझे नास्तिक कहते हैं।

मैं दुनिया के सभी महापुरुषों को मनुष्य मानता हूँ और मानवीय दृष्टि से उनका मूल्यांकन करना चाहता

1. पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढ परप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥

हूँ। मैं श्रद्धा-भक्ति के नाम पर उनकी गलत बातों, गलत आचरणों को सही नहीं मानता और न ही सही सिद्ध करने का प्रयास करता हूँ। प्रकृति में सर्वत्र कारण-कार्य की व्यवस्था है, जड़ तत्त्वों के अपने गुण-धर्म हैं। कुछ होने से ही कुछ होता है। शून्य से कुछ नहीं होता। कारण-कार्य-व्यवस्था में चमत्कार नाम की कोई चीज नहीं है। सारे चमत्कार छल-कपट हैं तथा धूर्तों द्वारा मूर्खों को फंसाने के जाल हैं। मैं किसी भी बाबा, महात्मा, सिद्ध नामधारी को चमत्कारी नहीं मानता। साथ ही मैं किसी महापुरुष को किसी ईश्वर का अवतार, पैगंबर, पुत्र, दैवीय या चमत्कारी मानकर उनके आगे भेड़ नहीं बनना चाहता। मैं मानता हूँ कि दुनिया में जितने महापुरुष हुए हैं वे सब मनुष्य थे। मनुष्य के अतिरिक्त कुछ नहीं। मनुष्य सबसे श्रेष्ठ है। सारे ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, मत-पंथ-ग्रंथ मनुष्यकृत हैं। यहां तक सारे देवी-देवता, ईश्वर-ब्रह्म-परमात्मा की कल्पना करने वाला भी मनुष्य है। ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि नहीं की है किंतु मनुष्य ने ही ईश्वर की कल्पना की है। इसलिए भी लोग मुझे नास्तिक कहते हैं।

मैं यह मानता हूँ कि जड़ और चेतन (सांख्य, योग, गीता के अनुसार प्रकृति और पुरुष) दोनों एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न, स्वतंत्र और अनादि-अनंत हैं। न जड़ से चेतन की उत्पत्ति हुई है और न चेतन से जड़ की। दोनों अजन्मा और नित्य हैं। यह दिखता हुआ सत्तात्मक संसार मृग-मरीचिका के समान भ्रमपूर्ण और झूठा नहीं है, किन्तु नित्य परिवर्तित होते हुए भी इसकी यथार्थ सत्ता है। न तो नये सिरे से पूरे संसार की सृष्टि होती है और न सर्वथा प्रलय। जड़ तत्त्वों के अनादि निहित स्वभावसिद्ध गुण-धर्मों तथा प्रकृति की कारण-कार्य व्यवस्था से सृष्टि की प्रक्रिया अबाधगति से स्वयमेव संपादित होती रहती है। जड़ तत्त्वों के गुण-धर्मों एवं संयोग-वियोग से नाना प्रकार की वस्तुओं का निर्माण-विनाश निरंतर स्वयमेव होता रहता है। जड़-चेतन के गुण-धर्मों को छोड़कर अलग कहीं कोई और सृष्टिकर्ता नहीं है जो सोच-सोचकर संसार की सृष्टि करता हो। जीव जैसा कर्म करता है प्रकृति के नियमानुसार तथा कर्मफल भोग के व्यवस्थानुसार जीव को अपने कर्मों

का फल स्वयमेव मिलता रहता है। जीवों के कर्मों का विधाता तथा कर्मफल भोग दाता कोई आकाशीय दैवी शक्ति या ईश्वर नहीं है और न जीवों को कर्म करने की प्रेरणा देने वाला कोई ईश्वर है, किन्तु जीव अपनी स्वतंत्र इच्छा से स्वयं कर्म करता है। कर्म करने के पहले तो जीव स्वतंत्र रहता है कि वह उस कर्म को करे या न करे, किन्तु कर्म कर लेने के बाद वह अपने कर्मों के अधीन हो जाता है। अब उसे अपने किये कर्म का फल मिलेगा ही मिलेगा। कोई ईश्वर या देवी-देवता उसके कर्मों को माफ नहीं कर सकता, चाहे उसके आगे जितना रोओ, गिड़गिड़ाओ, पूजा-पाठ करो। सच तो यह है ऐसी कोई दैवी शक्ति या ईश्वर है ही नहीं। मेरे इन विचारों के कारण लोग मुझे नास्तिक कहते हैं।

मैं यह मानता हूँ कि यह जीव किसी के हाथ की कठपुतली नहीं है और न इसका कोई सूत्रधार है। इसे किसी ईश्वर की अघटित घटना पटीयसी और दुरत्यया माया भटका नहीं रही है किन्तु विषयों की आसक्ति एवं आदत बनाकर यह स्वयं भटक रहा है और संत-सद्गुरु द्वारा स्वरूपबोध पाकर तथा विषयों की आसक्ति त्यागकर यह भवबंधन से मुक्त हो सकता है। वस्तुतः मन का मोह, विषयों की आसक्ति एवं गलत आदतें ही माया हैं। इनको छोड़कर माया और कुछ नहीं है। मैं अपने को समुद्र-बूंदवत किसी ईश्वर का अंश नहीं मानता। यह जीव न अंश है न अंशी, न व्याप्य है न व्यापक। यह तो कारण-कार्य भाव से रहित शुद्ध-बुद्ध अजर-अमर अखंड है। इसे किसी अंशी ईश्वर में मिलकर पूर्ण और कृतार्थ नहीं होना है, किन्तु यह स्वरूपतः पूर्ण एवं कृतार्थ रूप स्वयं है। मैं अपने को दीन-हीन, अधम, तुच्छ, पतित, पामर मानकर तथा किसी अदृश्य-अज्ञात सत्ता को सर्वसमर्थ, सर्वश्रेष्ठ, दयालु, भक्तवत्सल, पतितपावन, जगत-तारक, दीनजन रक्षक, दीनानाथ मानकर उसकी आराधना, प्रार्थना एवं खुशामद नहीं करता और न अपने उद्धार के लिए उसकी विनय-वंदना करता हूँ और न उसके आगे आत्मनिवेदन करके रोता-गिड़गिड़ाता हूँ। इसलिए लोग मुझे नास्तिक कहते हैं।

मेरी दृष्टि में चलते-फिरते प्राणी ही देवी-देवता हैं, जीव ही शिव तथा आत्मा ही परमात्मा है। मैं चलते-फिरते प्राणियों के अलावा कोई और देवी-देवता नहीं मानता, जीव से अलग शिव तथा आत्मा से अलग परमात्मा नहीं मानता। मेरी दृष्टि में प्राणियों से अलग माने गये देवी-देवता, ईश्वर-ब्रह्म मनुष्य की कल्पना है। आवश्यकतानुसार मनुष्य नये-नये देवी-देवताओं का सृजन करता है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आज हिन्दुओं में ही अपने को कट्टर वैदिक कहने वाले ही वेद वर्णित देवी-देवता की पूजा-आराधना नहीं करते। आज हिन्दुओं में जिन देवी-देवताओं की मान्यता एवं पूजा-आराधना है उनमें कोई वैदिक नहीं है, सबके सब अवैदिक हैं। मेरे इस विचार के कारण लोग मुझे नास्तिक कहते हैं।

मैं चित्र या मूर्ति को किसी महापुरुष की प्रतिकृति मानता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि किसी महापुरुष के चित्र या मूर्ति को देखने से उस महापुरुष की याद आती है। उनके उज्ज्वल जीवन-चरित्र, त्याग-तप, उच्च रहनी, सद्गुण, समाज के प्रति उनके उपकार की याद आती है और मन में प्रसन्नता तथा सात्त्विक भावना आती है। हमें भी अपना जीवन उस महापुरुष के जीवन जैसा बनाने तथा सत्यपथ में चलने की प्रेरणा मिलती है। इसलिए महापुरुषों के चित्र आदि रखना चाहिए। उस चित्र या मूर्ति को साफ-सुथरा रखना ही उसकी पूजा है, किन्तु मैं चित्र या मूर्ति को देवी-देवता या भगवान-भगवती मानकर उनके आगे हाथ जोड़ कर वंदना नहीं करता। उनको साष्टांग दण्डवत-प्रणाम नहीं करता, 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' कहकर उनकी आरती नहीं करता, उनके आगे धूप-दीप नहीं जलाता, उन्हें फूल-माला नहीं चढ़ाता या पहनाता, उनको नैवेद्य और भोग अर्पित नहीं करता और न भोग-मोक्ष के लिए मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ, क्योंकि ऐसा करना मात्र भावुकता एवं भोलापन है। मेरे इस विचार के कारण लोग मुझे नास्तिक कहते हैं।

मैं यह मानता हूँ कि प्रातःकाल उठकर गंगा या पास की किसी नदी में स्नान करने जाना चाहिए क्योंकि इससे प्रातः भ्रमण के साथ प्रातःकाल के शुद्ध वायु

सेवन एवं शांत वातावरण का लाभ होता है जो शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य के लाभप्रद है। इससे मन में सात्त्विक भावना भी आती है किन्तु मैं यह नहीं मानता कि किसी नदी का नाम लेने, उसके दर्शन करने तथा उसमें स्नान करने मात्र से पुण्य होता है तथा जन्म-जन्मांतरों के पाप कट जाते हैं और मुक्ति मिल जाती है। मेरी दृष्टि में यह केवल मिथ्या महिमा है जो लोगों को प्रातः जल्दी उठने, घर से निकलने, भ्रमण करने तथा प्रातः स्नान आदि करने के लिए की गयी है। इसलिए लोग मुझे नास्तिक कहते हैं।

मैं यह मानता हूँ कि राष्ट्रीय एकता, सामाजिक संगठन, मेल-मिलाप, विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान, जलवायु परिवर्तन, मानसिक प्रसन्नता आदि की दृष्टि से तीर्थयात्रा करनी चाहिए। मन की प्रसन्नता एवं सात्त्विक भावना के लिए मंदिर-मस्जिद में जाकर पूजा-पाठ, नमाज आदि भी करना चाहिए। जिसकी जैसी श्रद्धा, भावना एवं मान्यता-विश्वास है उसके अनुसार वह पूजा-पाठ करने को स्वतंत्र है। किन्तु मैं यह नहीं मानता कि तीर्थ-हज्र जाने से, मंदिर-मस्जिद जाने से तथा पूजा-पाठ करने से पाप कटते हैं और पाप काटने के लिए यह सब करना चाहिए। मैं यह मानता हूँ कि दुनिया भर के पाप करने के बाद उन्हें काटने के लिए, उनके फल-भोग से बचने के लिए तीर्थ-हज्र जाना, मंदिर-मस्जिद जाकर पूजा-प्रार्थना करना, नमाज पढ़ना केवल दिखावा है तथा अपने को एवं समाज को धोखा देना है। पाप के फल से बचने का रास्ता तीर्थयात्रा या पूजा-पाठ नहीं है, किन्तु जो पापकर्म हो चुके हैं उनके लिए दृढ़ ग्लानि करके पुनः वैसे पाप कर्म न करने का संकल्प लेकर सत्यपथ पर चलना है। मेरे इस विचार के कारण लोग मुझे नास्तिक कहते हैं।

मैं यह तो मानता हूँ कि परम्परा-निर्वाह के लिए थोड़े मांगलिक द्रव्यों का हवन किया जा सकता है, किन्तु वर्षा की वृद्धि, पर्यावरण शुद्धि के लिए यज्ञ-हवन के नाम पर हजारों-लाखों मन घी-मेवा-अन्न को फूंकना बेकार है तथा देश की गरीबी में वृद्धि करना है। मैं यह भी मानता हूँ कि हर व्यक्ति को अपने मान्य ग्रंथ का पाठ-पठन करना चाहिए। जिसको जिस नाम में श्रद्धा है

वह उस नाम का जप-कीर्तन भी कर सकता है, क्योंकि यह सब भी मन की प्रसन्नता एवं सात्त्विक भावना में सहायक है, किन्तु मैं यह नहीं मानता कि अखंड पाठ करने, अखंड कीर्तन तथा जागरण करने से कोई पुण्य होता है। बल्कि मेरी दृष्टि में अखंड पाठ, कीर्तन, जप, जागरण करना पाप है, क्योंकि इससे लोगों की नींद में बाधा पड़ती है, विद्यार्थियों की पढ़ाई में विघ्न होता है तथा बीमारों को तकलीफ होती है। अखण्ड पाठ, जप-कीर्तन करना हो तो बिना लाउडस्पीकर लगाये किया जा सकता है। मेरे इस विचार के कारण बहुत-से लोग मुझे नास्तिक कहते हैं।

वस्तुतः पवित्र भावना पूर्वक लोकहित की दृष्टि से किया गया हर कर्म पूजा है जैसा सद्गुरु कबीर ने कहा है—‘जो कुछ करौं सो पूजा।’ पूरा संसार देवालय है, क्योंकि प्राणि मात्र ही असली देवी-देवता हैं—कबीर जेते आतमा, तेते सालिग्राम। निर्मल जीवन संत-गुरु ही असली सगुण-साकार भगवान हैं और उनकी सेवा करना, आज्ञा का पालन करना, अपने जीवन को भी निर्मल बनाना भक्ति है तथा घट-घट में विराजमान चेतन जीव ही निर्गुण-निराकार परमात्मा है और जड़ जगत से लौटकर अपने आत्मस्वरूप में, स्वस्वरूप में स्थित होना भक्ति का वास्तविक रूप तथा मानव जीवन का उद्देश्य है। ऐसा मानना, इस पर विश्वास करना और इस विश्वास के अनुसार जीवन जीना, कर्म करना ही आस्तिकता है। थोड़े में कहें तो प्राणिमात्र के प्रति भगवद्बुद्धि रखना, जान-बूझकर किसी को किसी प्रकार तकलीफ न देना, ईमानदारी एवं नैतिकतापूर्वक जीवन-जीना—यही असली आस्तिकता है और मैं इसी पर विश्वास करता हूँ। गलत रास्ते पर चलने वाला व्यक्ति भी सार्वजनिक रूप में गलत कर्म को गलत ही कहेगा। यह अलग बात है कि कौन कितना चल पाता है किन्तु जाने-अनजाने हर किसी को नैतिकता में विश्वास है, इसलिए दुनिया में एक भी व्यक्ति नास्तिक नहीं है। फिर भी मेरे इस विश्वास के कारण कोई मुझे नास्तिक कहता है, तो मैं उसका स्वागत करता हूँ।

—धर्मेन्द्र दास

मेरा मन पंछी ये गाये

रचयिता—डॉ. अमरनाथ सिंह

मेरा मन पंछी ये गाये।
निर्भय नैन गगन इतराये...
मुक्त पंख उड़ पाये।
मेरा मन पंछी ये गाये॥

एक ही जड़ है, एक तना है,
डाल-डाल से वृक्ष घना है।
रिश्ता शाखों से अपना है,
आज एक कल भी रहना है॥
पात-पात से प्रीत लगाये...
पवन संग मिल पंख डुलाये।
मेरा मन पंछी ये गाये॥

जुदा-जुदा अन्दाज हमारा,
मंदिर-मसजिद या गुरुद्वारा।
भले अलग बोली या भाषा,
चिन्तन एक एक जिज्ञासा॥
अभिव्यक्ति की हर धाराएं...
दरिया से सागर बन जायें।
मेरा मन पंछी ये गाये॥

मन में प्रीति की रंगत घोले,
नस-नस में रंग प्रेम का डोले।
दिल की हर धड़कन ये बोले,
एक दूजे के हम सब हो लें॥
हर रंगों से मिलकर न्यारा...
प्यार का रंग बसंती भाये।
मेरा मन पंछी ये गाये॥

दिल दया रहम को तजकर, संध्या नमाज खाली है।
प्राणी से बैर बढ़ाकर, ईश्वर पूजा जाली है॥
सब पूजा धर्म कर्म है, निर्मल मन वाणी काया।
मानव में प्रेम प्रसारण, अरु जीव मात्र पर दाया॥
पूज्य गुरुदेवजी—हृदय के गीत

सत्यान्वेषी चिंतक व सच्चे साधक थे कबीर

लेखक—श्री सीताराम गुप्ता

शिक्षा के प्रसार-प्रचार के बावजूद आज पूरे विश्व को अंधविश्वास ने बुरी तरह से जकड़ा हुआ है। तथाकथित शिक्षित समाज भी इसके चंगुल से मुक्त नहीं है। इसका विरोध भी कम नहीं होता। कुछ लोगों के लिए कर्मकाण्ड और अंधविश्वास बहुत अच्छा व्यवसाय है अतः वे किसी भी कीमत पर समाज को इससे मुक्त नहीं होने देना चाहते। जो लोग समाज से अंधविश्वास की समाप्ति करके समाज को नई दिशा देना चाहते हैं उनको अपनी जान तक से हाथ धोना पड़ा है। कबीर ने मध्य काल में अंधविश्वास और पाखण्ड का जितना विरोध किया वह अद्वितीय है। कबीर न केवल एक महान संत, कवि व चिंतक थे अपितु एक प्रखर क्रांतिकारी समाज सुधारक व आडंबर के घोर विरोधी भी थे।

सबसे बड़ी व महत्त्वपूर्ण बात यह कि कबीर साधक होते हुए भी कपड़ा बुनने के काम में मस्त रहते थे। वे सच्चे संन्यासी थे। कबीर न हिन्दू थे न मुसलमान अपितु एक सच्चे व निडर इंसान थे। क्योंकि कबीर सत्यान्वेषी थे, अतः अनुभूत सत्य को बेबाक व निडर होकर समाज के सामने रख देते थे। इसके लिए उन्हें सत्ता व मठाधीशों का कोपभाजन भी बनना पड़ा। धर्म-अध्यात्म के नाम पर प्रचलित आडंबर का कबीर ने घोर विरोध किया। हिन्दुओं व मुसलमानों दोनों को उनके पाखण्डों के लिए फटकारा। उस समय के अनुसार यह एक अत्यन्त क्रांतिकारी कदम था। जो आज भी संभव नहीं लगता। बोलकर तो देखिए किसी धर्म अथवा मठाधीश की ज्यादतियों के विरुद्ध।

यह कबीर ही थे जिन्होंने धर्म-अध्यात्म के नाम पर हो रहे पाखण्डों का खण्डन किया। यह उनके क्रांतिकारी व सत्यान्वेषी ही नहीं ज्ञानी होने का भी प्रमाण है। उन्होंने सत्संग व यात्राओं से सारा ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने विज्ञान की शिक्षा नहीं पाई लेकिन उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक था। किसी बात को जांच-परखकर

ही मानते थे। ज्ञान या कह लीजिए सत्य की खोज में भटकते रहे।

कबीर काशी में रहते थे। पवित्र नगरी काशी जहां मरण भी मोक्ष की गारंटी माना जाता है। कबीर इन बेहूदी बातों को नहीं मानते थे। शास्त्रों की अनर्गल बातों पर विश्वास नहीं करते थे। हर मिथक को तोड़ देना चाहते थे कबीर। अपने अंतिम समय में मगहर जा बसे। मगहर में ही उनकी समाधि है। वही मगहर जहां मरने वाले को कहते हैं मोक्ष नहीं मिलता। यह कोरा अंधविश्वास है। कबीर ने इस मिथ्या धारणा को चूर-चूर कर डाला। कबीर ने कहा कि ईश्वर तो हर प्राणी में मौजूद है अतः उसे मंदिर-मस्जिद व अन्य पूजा स्थलों में खोजना व्यर्थ है। आत्मज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। विकृत विचार बांधते हैं तो सकारात्मक विचार मुक्त करते हैं।

कबीर जाति-पांति के घोर विरोधी थे। मूर्तिपूजा को आडंबर मानते थे। लोगों ने कबीर की ही मूर्तियां बना कर पूजा शुरू कर दिया। पूजा-पाठ में पैसा जो बरसता है। कबीर कर्मकाण्ड के हर तरह से विरोधी। इस संसार को निष्पक्ष होकर देखा और जैसा अनुभव किया सबके सामने रख दिया। संसार को साक्षी भाव से देखा, उसका मन पर असर नहीं लिया। मन की निर्मलता के लिए यह जरूरी है। धर्म के नाम पर लाखों-करोड़ों बनाने वाले कबीर को हेय दृष्टि से देखते हैं। उनकी आलोचना करते हैं। कर्मकाण्ड करने वाले, कथावाचक व तथाकथित गुरु कबीर का तो विरोध करते हैं लेकिन उनके दोहों से लाखों-करोड़ों का व्यापार कर रहे हैं। हर तीसरा कथावाचक भोलीभाली जनता को गुमराह कर दीक्षा दे रहा है, शक्तिपात कर रहा है। यदि “गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँय, बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दिया मिलाय” को मानते हो तो “मोको कहाँ दूँटे रे बंदे मैं तो तेरे पास में।

ना मैं मन्दिर ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलाश में” को भी मानिए। लेकिन नहीं।

हम कहते हैं कि कबीर ने गुरु के महत्त्व को सबसे ज्यादा रेखांकित किया है लेकिन उनका तो कोई गुरु नहीं था। लोग कहते हैं कि कबीर के गुरु थे रामानन्द। लेकिन क्या गुरु रामानन्द ने कबीर को विधिवत दीक्षा दी थी? कबीर ने रामानन्द को गुरु मान लिया था, बना लिया था या चुन लिया था लेकिन क्या स्वामी रामानन्द ने भी उन्हें शिष्य बनाया या माना था? क्या स्वामी रामानन्द भी कबीर के शिष्यत्व पर रीझे थे? क्या कबीर-सा शिष्य पाकर उन्हें संतुष्टि हुई थी? शायद नहीं। एकतरफा मामला था। कबीर अपना प्रकाश स्वयं बन गये थे और औरों को भी प्रकाशित करना चाहते थे।

*मोको कहाँ ढूँढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं मन्दिर ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया-कर्म में, नाहि जोग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तलास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।*

यहां गुरु नदारद है। अप्प दीपो भव की स्थिति है। आप पल भर में परम तत्त्व को जान सकते हैं, जरूरत है आत्मविश्लेषण की, स्वयं की खोज करने की। कबीर की कुछ साखियां देखिए—

*ज्यों तिल माहिं तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझ में, जाग सके तो जाग ॥
कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूँढ़े बन माहिं।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया जानत नाहिं ॥*

लेकिन विडंबना तो देखिये कि कबीर के बारे में एक ऐसी भ्रांति आज तक जन-मानस में प्रचलित है जिसका किसी ने खण्डन नहीं किया। पोंगापंथी तो खैर क्या खण्डन करते विद्वानों ने भी नहीं किया। सब जानते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों उनके शिष्य थे। हिन्दू उन्हें हिन्दू तथा मुसलमान उन्हें मुसलमान मानते थे। उनकी मृत्यु पर हिन्दुओं ने कहा कि वे कबीर का दाह संस्कार करेंगे और मुसलमानों ने कहा कि वे उन्हें दफनाएंगे। जब उनकी मृत देह से चादर हटाई गई तो उनके शव की जगह पर फूलों की एक ढेरी मिली। हिन्दुओं और मुसलमानों ने उन फूलों को आधा-आधा

बांट लिया। हिन्दुओं ने अपने आधे फूलों का दाह संस्कार कर दिया और मुसलमानों ने वे फूल दफना दिए। यह बात अपनी जगह दुरूस्त है कि कबीर साहब हर बुराई के विरोधी तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे लेकिन संसार का इससे बड़ा झूठ क्या होगा कि उनके शव की जगह फूल मिले।

किसी भी दृष्टि से यह बात उचित प्रतीत नहीं होती है वह भी एक सत्यान्वेषी के लिए। ऐसे चमत्कार सुने तो जाते हैं देखे नहीं जाते। यह संभव ही नहीं है, फिर क्यों ऐसी अनर्गल बातों को साहित्य के जरिए प्रचारित-प्रसारित किया जाता है? इन बेतुकी बातों का खण्डन क्यों नहीं किया जाता? जहां पर मृतक का दाह-संस्कार करने की प्रथा है वहां दाह-संस्कार के बाद अगले किसी दिन फूल चुनने की रस्म होती है। फूल चुनना वास्तव में उन अस्थियों के चुनने को कहते हैं जो जलने से बच जाती हैं। उन्हें किसी पवित्र नदी या सरोवर में प्रवाहित या विसर्जित कर दिया जाता है। अस्थि-अवशेषों को जिन्हें फूल कहा जाता है हिन्दुओं और मुसलमानों ने आधा-आधा बांट लिया हो और हिन्दुओं ने अपने आधे फूलों अथवा दग्धावशेषों को किसी नदी में प्रवाहित कर दिया हो तथा मुसलमानों ने आधे फूलों अथवा दग्धावशेषों को दफना दिया हो।

जो भी हो, कोई शव कभी फूल में परिवर्तित नहीं हो सकता। इस प्रकार की अनर्गल बातों से आप समझते हैं कि कबीर का रुतबा बढ़ेगा? कभी नहीं। कबीर तो वास्तव में वीतरागी हो चुके थे। वे राग-द्वेष, लाभ-हानि, सुख-दुख व जीवन-मरण से ही नहीं मोक्ष अथवा बंधन से भी निरपेक्ष हो चुके थे। कबीर पुनर्जन्म के लिए नहीं, वर्तमान जन्म में सुधार के लिए चिंतित व प्रयासरत थे। उनकी मृत्यु से जुड़े चमत्कारी प्रसंग उनकी जीवन भर की साधना को निरर्थक व उनकी महानता को कम कर देते हैं। एक सत्यान्वेषी का मूल्यांकन करते समय सत्य की उपेक्षा कैसे की जा सकती है? कबीर के साहित्य की चर्चा करते समय ही नहीं उनके जीवन व मृत्यु के संबंध में चर्चा करते समय भी हमें अत्यन्त संतुलित, वैज्ञानिक व व्यावहारिक दृष्टिकोण का परिचय देना चाहिए।

पढ़ना और है, गुनना और!

लेखक—श्री कृष्णदत्तजी भट्ट

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई अच्छर 'प्रेम' के, पढ़े सो 'पंडित' होय ॥

शिक्षा का दिन-दिन प्रचार बढ़ रहा है। स्कूल खुल रहे हैं, कॉलेज खुल रहे हैं, विश्वविद्यालय खुल रहे हैं, शोध-संस्थान खुल रहे हैं। पढ़ाई के लिए सुविधाएं बढ़ायी जा रही हैं। बजट में लाखों-करोड़ों रुपयों का आयोजन किया जा रहा है। शिक्षा-आयोग बन रहे हैं। देशी, विदेशी, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं खड़ी की जा रही हैं। बच्चों के लिए, स्त्रियों के लिए, अधवयसों के लिए पढ़ाई का प्रबन्ध हो रहा है। अज्ञान के अन्धकार को मिटाने के लिए विश्वभर के विद्वान, राजनीतिज्ञ, समाजसुधारक ज्ञान की जलती हुई मशालें लेकर बाहर निकल पड़े हैं। ऐसा लगता है कि कुछ ही बरसों के भीतर विश्व से अशिक्षा और अज्ञान का नामोनिशान ही मिट जायेगा।

बहुत खूब।

कौन न स्वागत करेगा इस शिक्षा-अभियान का?

× × ×
'अंगूठाछाप' लोग शेक्सपीयर और मिल्टन पर, कैंट और हैगेल पर बहस करने लगें; ज्ञान और विज्ञान की प्रगति पर वाद-विवाद करने लगें; राजनीति और समाजशास्त्र, इतिहास और मनोविज्ञान की गुत्थियां सुलझाने लगें—इससे बढ़कर और क्या चाहिए? अशिक्षित लोगों का बौद्धिक धरातल ऊंचा उठे, वे भी अपने को, समाज को, विश्व को भलीभांति समझकर अपनी और परायी समस्याओं पर चिन्तन करने लगें, इससे अच्छा और क्या होगा? आज जिनके लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' है, कल वे ही संयुक्त राष्ट्रसंघ में उपस्थित समस्याओं पर, संसद और विधान सभा में उपस्थित बिलों पर अपने मत व्यक्त करने लगें, तो इसका स्वागत कौन न करेगा?

अज्ञानान्धकार को मिटाने के लिए किया जानेवाला कोई भी आन्दोलन प्रशंसनीय है, अभिनन्दनीय है। बट्टैण्ड रसेल लिखते हैं—

'Happiness is of two sorts. The two sorts I mean might be distinguished as plain and fancy, or animal and spiritual, or of the heart and of the head. Perhaps the simplest way to describe the difference between the two sorts of happiness is to say that one sort is open to any human being, and the other only to those who read and write'.¹

'प्रसन्नता दो प्रकार की है—एक तो सीधी-सादी, दूसरी कल्पना-मिश्रित। एक पाशविक, दूसरी आध्यात्मिक, एक हृदय की, दूसरी मस्तिष्क की। एक का आनन्द कोई भी मनुष्य उठा सकता है, दूसरी का आनन्द केवल वे ही उठा सकते हैं, जो पढ़े-लिखे हैं।'

मतलब नाख्वांदा लोग उस प्रसन्नता से वंचित रह जाते हैं, जो पढ़े-लिखे लोगों के ही हिस्से में लिखी रहती है।

जरूरी है कि प्रसन्नता का यह आनन्द हर आदमी को मिल सके। इसलिए हर आदमी को साक्षर होना ही चाहिए।

× × ×
परन्तु क्या साक्षरता से ही विश्व की सभी समस्याओं का निदान निकल आयेगा?

पोथी पढ़ लेने से ही आज की स्थिति में कल्पनातीत सुधार हो जायेगा?

शिक्षा का प्रचार होने से ही अज्ञान का पर्दाफाश हो जायेगा? मनुष्य का सर्वांगीण विकास हो जायेगा?

जी नहीं। बात ऐसी नहीं है।

रस्किन ने इस समस्या पर गम्भीरता से सोचा था। वह कहता है—

'You might read all the books in the British Museum and remain an utterly 'illiterate' uneducated person; but if you read ten pages of a good book, letter by letter...that is to say, with real accuracy,.... you are forever wiser in some measure an educated person.'²

1. Bertrand Russel : The Conquest of Happiness. p. 93

2. Ruskin : Sesame and Lilies. p. 14

‘ब्रिटिश म्यूजियम की सारी किताबें पढ़कर भी आप ‘अशिक्षित’ मनुष्य बने रह सकते हैं और किसी अच्छी पुस्तक के केवल दस पन्ने पढ़कर भी आप किसी हदतक ‘शिक्षित’ बन सकते हैं, बशर्ते कि आप पढ़ें ठीक से, प्रामाणिकता से। यह ‘ठीक से’ पढ़ना क्या है? इसका नाम है—‘गुनना’।

पढ़ना और है, गुनना और।

आज पढ़े-लिखे तो हजारों हैं, लाखों हैं, करोड़ों हैं, पर गुने हुए लोग कितने हैं। शायद अंगुलियों पर गिनने लायक मुश्किल से निकलेंगे।

× × ×

आज से 66 साल पहले स्वामी रामतीर्थ ने अपने ‘अलिफ’ नाम के रिसाले में एक लेख में इसका एक बढ़िया उदाहरण दिया था।

बचपन में जब कौरव और पाण्डव एक साथ पढ़ते थे तो एक दिन उन सबकी परीक्षा ली गयी। किसी विद्यार्थी ने आधी किताब सुना दी, किसी ने पूरी। पर युधिष्ठिर से पूछा गया तो उसने कहा—‘मैंने तो केवल दो वाक्य याद किये हैं।’

परीक्षक महाशय को अत्यन्त क्रोध हो आया। वे बोले—‘अरे दुष्ट! तू तो सबसे बड़ा है और अभी तक सिर्फ दो वाक्य याद किये। यह कैसी सुस्ती है। तुझे लज्जा नहीं आती? चुल्लूभर पानी में डूब मर।’

परीक्षक ने इतने से ही बस न की। लगे चपत-पर-चपत मारने! बेचारे राजकुमार के कपोल लाल हो गये, पर वाह रे राजकुमार! उफ तक नहीं की। शान्त खड़ा रहा।

यह देख परीक्षक को अत्यन्त विस्मय हुआ। सोचा कि आज दुर्योधन को किसी अपराध पर धमकाना चाहा था तो वह पगड़ी उतारने को तैयार हो गया था। भगवान्, यह कैसा राजकुमार है कि इसे पीटते-पीटते अधमरा कर दिया है और इसने चूँ तक नहीं की। प्रसन्नवदन खड़ा है।

अब युधिष्ठिर का हाल सुनिये। अक्षर-परिचय होने के बाद पहला ही वाक्य गुरुजी ने बताया था—‘क्रोध मत करो।’

सुशील बालक तभी से एकान्त में जाकर उस पर विचार करने लगा। कानों से सुने पाठ को रोम-रोम में उतारने लगा। बेचारे युधिष्ठिर को उस शिक्षा-कला की खबर तक न थी, जिसकी बदौलत साधारण बाबू और पण्डित लोग विद्यारूपी गंगा की नहर अपने मस्तिष्क पर इस सफाई के साथ बहा देते हैं कि रुड़कीवाली नहर के साथ एक बूंद भी पुल से नीचे गिरने नहीं पाती। ऊपर-ऊपर तो गंगा बहती है और निचला हिस्सा सूखा-का-सूखा पड़ा रहता है। देखने में सैकड़ों पुस्तकें पढ़ डालीं, परीक्षाओं में पूरे-पूरे नम्बर हासिल किये, विश्वविद्यालय में पारितोषिक और पदक प्राप्त किये, किन्तु भीतर एक बूंद भी न पड़ने दी। आचरण में कुछ प्रवेश न होने दिया। बेचारा युधिष्ठिर इस कला से बिलकुल अपरिचित था। उसने जो कुछ पढ़ा, झट उसके हृदय में उतरने लगा।

उसके विचार-क्रम का रूप यह था—‘क्रोध मत करो’—भला क्यों कर? हमें तो क्रोध आ जाता है। क्यों आता है? उचित है या अनुचित? क्रोध के बिना काम चल सकेगा या नहीं? यदि क्रोध न किया तो नौकर लोग ढीठ हो जायेंगे, काम अच्छा न करेंगे, रोब उठ जायेगा, प्रबन्ध बिगड़ जायेगा, रसोई समय पर न तैयार होगी। आदि।

क्रोध को छोड़ने में कठिनाइयां तो होंगी, पर क्या क्रोध को छोड़ना असम्भव है? यदि असम्भव होता तो गुरुजी ऐसा उपदेश ही न देते। शास्त्र ही ऐसा अनुशासन क्यों देते?

अब क्या करें? क्रोध तो आ ही जाता है। तो क्या यह उचित होगा कि मान तो लिया जाये कि क्रोध करना अनुचित है, पर समय पर क्रोध आ जाये तो आ जाने दें? नहीं, यह तो छल है। गुरु और शास्त्र के साथ धोखेबाजी है। मुंह से ‘हां’ कर लेना और अमल में ‘न’ लाना।

अब से दृढ़ संकल्प करते हैं कि ‘क्रोध को पास न फटकने देंगे।’

क्रोध क्यों उत्पन्न होता है? प्रायः जब कोई काम बिगड़ता है या कोई चीज खराब हो जाती है तो क्रोध आता है। अरे मन! काम तो एक बार बिगड़ चुका। तू

उस पर चित्त को क्यों बिगाड़ता है? चीज तो खराब हो गयी होगी दस, बीस, पचास, सौ की, पर उसके लिए चित्त-जैसी अनमोल चीज को खराब कर बैठता है? आनन्द मेरा जन्मजात स्वत्व है। किसी सांसारिक वस्तु के लिए इस जन्मजात स्वत्व को क्यों खोऊं?

राजकुमारों के यहां रिवाज तो है कि बात-बात पर उरद की पीठी की तरह ऐंठना, किन्तु गुरुजी का उपदेश है—‘शान्त रहो, मन को हिलने ही न दो।’ गुरुजी की इस आज्ञा का मैं पालन करूंगा, चाहे सारी दुनिया मेरे खिलाफ हो।

इस प्रकार सोच-विचार करते-करते युधिष्ठिर ने उन तमाम मौकों को याद किया, जहां उसकी शान्ति के पैर फिसला करते थे और अपने-आप को खूब समझाया—‘ऐ अनजान मन, अब तक जो हुआ सो हुआ। आगे से ऐसे कोमल समयों पर संभलकर चलना। जब कोई कुछ कटुवाक्य कहे, गाली दे, काम बिगाड़ दे, हमारे खिलाफ साजिश रचे अथवा जब चित्त अस्वस्थ हो, तब तू शान्त रहा कर।’

इसके पश्चात युधिष्ठिर ने बहुत बार जान-बूझकर अपने-आप को ऐसे स्थानों पर पहुंचाया, जहां दुर्योधन आदि ने उसे छेड़ा और दुःख देना चाहा, किन्तु युधिष्ठिर ने हर बार ‘क्रोध मत करो’—इस पाठ का व्यावहारिक अनुभव सफलता के साथ किया। जब क्रोध बिलकुल छूट गया तो चित्त में चैन रहने लगा। आनन्द और प्रसन्नता ने रंग जमाया, मानो मुफ्त में खजाने हाथ आ गये। अनुभव ने युधिष्ठिर को यह सिद्ध कर दिखाया कि सब लोगों का यह ख्याल गलत है कि ‘क्रोध के बिना काम नहीं चल सकता।’

परीक्षक महोदय ने जब देखा कि युधिष्ठिर पर मार का कोई असर नहीं हो रहा है, तब वे समझे—‘ओहो! यह लड़का तो हमारा भी गुरु है। यह हमको सिखा रहा है कि पढ़ना किसको कहते हैं?’

उनकी आंखों में आंसू डबडबा आये। बच्चे को गोद में लेकर वे फूट-फूटकर रोने लगे।

*इल्म चंदां कि वेशतर रब्बानी,
चूं अमल दर तो नेस्त नादानी।*

‘तू चाहे जितनी विद्या पढ़ जाये, यदि उस पर अमल नहीं है, तो सिर्फ नादानी है।’

तो, इसका नाम है पढ़ना, इसका नाम है गुनना।

लोग पढ़ते हैं ऊंचा पद पाने के लिए। धन कमाने के लिए। लोगों से प्रशंसा पाने के लिए। ऊंचा रुतबा पाने के लिए।

कुछ का यह हौसला पूरा हो जाता है।

पर यही तो जीवन का लक्ष्य है नहीं।

यही तो जीवन की प्रगति है नहीं।

रस्किन के शब्दों में जीवन की प्रगति की व्याख्या यह है—

‘He only is advancing in life, whose heart is getting softer, whose blood warmer, whose brain quicker, whose spirit is entering into Living Peace.’

‘केवल उसी का जीवन प्रगति की ओर जा रहा है, जिसका हृदय दिन-दिन मुलायम से मुलायम होता जा रहा है, जिसके रक्त की ऊष्मा बढ़ती जा रही है, जिसका मस्तिष्क दिन-दिन तीक्ष्ण होता चल रहा है और जिसकी आत्मा स्थायी शान्ति की दिशा में प्रवेश करती आ रही है।’

× × ×

शिक्षा का लक्ष्य, विद्या का लक्ष्य है—मुक्ति।

‘सा विद्या या विमुक्तये।’

हम नाना प्रकार के बन्धनों से मुक्त न हुए, मानव मानव को बांटने वाले कटघरों में ही कैद बने रहे तो धिक्कार है हमारी शिक्षा पर, धिक्कार है हमारी विद्या पर।

हमारे यहां तो इसीलिए कहा है कि एक ही शब्द पढ़ लो—ढाई अक्षर का छोटा-सा शब्द है ‘प्रेम’। बस, बेड़ा पार है।

मानव-मानव से प्रेम। पशु-पक्षी से प्रेम। कीट-पतंग से प्रेम। पेड़-पौधों से प्रेम। चर-अचर से प्रेम। सृष्टि से प्रेम, सृष्टिकर्ता से प्रेम।

जीवन की सार्थकता इसी में प्राप्त हो जायेगी। इसके अलावा न कुछ पढ़ने की जरूरत है, न कुछ गुनने की?

(कल्याण, मई 2015 से साभार)

व्यवहार वीथी

अपना मालिक स्वयं बनें

संसार में अनेक प्रकार की कला है और सभी का अपना महत्त्व है और आवश्यकता भी, परंतु सभी कलाओं में सर्वोत्तम कला है जीवन जीने की कला। इस कला के अभाव में हर आदमी दुखी है और बाहरी अनेक ऐश्वर्यों से संपन्न होने के बावजूद भीतर से अशांत, पीड़ित एवं तनावग्रस्त है। जीवन जीने की कला के अभाव में अन्य सारी कलाएं बे-कला सिद्ध होती हैं, और बला बन जाती हैं। जिसे जीवन जीने की कला आ जाती है वह अपना मालिक स्वयं बन जाता है, किंतु जिसे यह कला नहीं आती वह गुलाम बनकर जीवन व्यतीत करता है। मनुष्य का दुर्भाग्य यह है कि वह अपनी गुलामी को समझ नहीं पाता, इसीलिए छोटी-छोटी बातों, छोटी-छोटी घटनाओं को देख-सुनकर वह दुखी-सुखी होता रहता है। जो निंदा-प्रशंसा, अपमान-सम्मान पाकर शोकित-हर्षित नहीं होता, जिसे बाहरी परिस्थितियां विचलित नहीं कर पातीं, जो सभी परिस्थितियों में सम, शांत, शीतल रहता है, वह अपना मालिक स्वयं बन जाता है। इस संदर्भ में तथागत बुद्ध के जीवन की एक घटना अत्यंत प्रासंगिक है—

तथागत बुद्ध एक जगह बैठे थे। एक व्यक्ति ने आकर उनके मुंह पर थूंक दिया। बुद्ध ने अपनी चादर से थूंक पोंछकर उससे शांत भाव से कहा—क्या तुम्हें कुछ और कहना है? बुद्ध की यह बात सुनकर वह व्यक्ति आश्चर्यचकित रह गया। उसे कुछ समझ नहीं आया कि क्या उत्तर दे। उसने तो सोचा था कि जब मैं बुद्ध के ऊपर थूंकूंगा तब वे गुस्सा करेंगे, गाली देंगे और पूछेंगे कि तुमने मेरे ऊपर क्यों थूका, तब मुझे क्या उत्तर देना है। परन्तु यहां तो बुद्ध शांत भाव से पूछ रहे हैं कि क्या तुम्हें कुछ और कहना है?

बुद्ध की बात सुनकर उसने कहा—मैंने तो आपसे कुछ कहा नहीं है, किंतु मैंने आपके ऊपर केवल थूका है।

तथागत बुद्ध ने कहा—तुमने मेरे ऊपर थूका यह तो ठीक है, परंतु मैंने समझा कि तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो, क्योंकि थूंकना भी एक प्रकार से अपनी बात कहना है। तुम्हारे मन में क्रोध इतना ज्यादा भर गया है, इतनी सीमा तक पहुंच गया है कि तुम अपनी बातों को शब्दों के द्वारा नहीं कह सके, जिसे तुमने थूंक कर कहा है। कितनी बार हम अपनी बात शब्दों से न कहकर इशारा से कहते हैं। तुमने भी यही किया है।

उस व्यक्ति ने कहा—मैंने कुछ कहा नहीं, मैंने तो थूंक कर केवल अपना क्रोध प्रकट किया है।

बुद्ध ने कहा—मैं भी समझता हूँ कि तुमने क्रोध किया है।

“तब फिर आपने क्रोध क्यों नहीं किया?”

बुद्ध ने कहा—तुम मेरे मालिक नहीं हो कि तुम क्रोध करो तो तुम्हारे पीछे मैं भी क्रोध करने लगूँ। तुम्हारे क्रोध करने से मैं भी क्रोध करने लगूँ तो मैं तुम्हारे पीछे चलने वाला तुम्हारा गुलाम हो जाऊँगा, किंतु अपना मालिक मैं स्वयं हूँ इसलिए तुम्हारे क्रोध करने पर मैं क्रोध क्यों करूँ। तुमने मुझ पर क्रोध किया, थूका, मैंने उसे पोंछ दिया, बस बात खत्म!

तथागत बुद्ध की बात सुनकर वह व्यक्ति वहां से चला गया और दूसरे दिन आकर बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा तथा रोने लगा। बुद्ध चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर बाद उस व्यक्ति ने जब अपना सिर उठाया तब बुद्ध ने उससे कहा—तुम्हें कुछ और कहना है? उस व्यक्ति ने कहा—आप क्या कह रहे हैं? मैंने तो अभी कुछ कहा नहीं है। बुद्ध ने कहा—मैं समझ गया। तुम्हारे मन का भाव इस समय इतना गहरा-घना हो गया है कि तुम उसे शब्दों से व्यक्त नहीं कर पा रहे हो। इसलिए तुमने उसे मेरे पैरों पर माथा रगड़कर रोकर व्यक्त किया है। कल तुमने थूंककर अपनी बात कही थी और आज रोकर।

उस व्यक्ति ने कहा—भगवन! कल मैंने बहुत बड़ी गलती की थी। आप मुझे क्षमा करें। मैं आज क्षमा मांगने आया हूँ। बुद्ध ने कहा—मैं क्षमा किसलिए करूँ? क्षमा करने जैसी कोई बात ही नहीं है। जैसे कल तुमने थूका वैसे आज तुम रो रहे हो। तुम्हारे क्रोध करने

पर मैं क्रोध करने लगूँ और रोने एवं क्षमा मांगने पर क्षमा करने लगूँ, जैसा तुम कहो वैसा करने लगूँ तो मैं तुम्हारा गुलाम हो गया। मैं किसी का गुलाम क्यों बनूँ?

प्रतिक्रिया में पड़ना, प्रतिकर्म करना गुलामी का लक्षण है। गुलाम सदैव कमजोर एवं परतंत्र होता है और मालिक बलवान एवं स्वतंत्र। हम भीतर से जितने कमजोर होते हैं बाहर उतनी जल्दी प्रतिक्रिया में पड़ते हैं और क्षुब्ध एवं दुखी होते हैं। गलत कर्म, बात, व्यवहार का उत्तर गलत कर्म, बात, व्यवहार से देना आंतरिक कमजोरी एवं गुलामी का प्रतीक है। स्वतंत्र एवं बलवान व्यक्ति गलत कर्म, बात, व्यवहार का उत्तर प्रेम, क्षमा से देता है और भीतर से शांत, शीतल, प्रसन्न रहता है। तथा दूसरों के लिए एक आदर्श उपस्थित करता है एवं दूसरों के दिल को जीत लेता है। इस संदर्भ में निम्न उदाहरण मननीय है—

एक जगह दंगा होने पर एक पुलिस अधीक्षक एक इंस्पेक्टर एवं कुछ सिपाहियों को साथ लेकर दौरे पर गये थे। वहां बातचीत के दौरान एक आदमी ने उनके मुंह पर थूक दिया। यह देखकर साथ चल रहे इंस्पेक्टर को बड़ा गुस्सा आया और उसने उस व्यक्ति की छाती पर रिवाल्वर तान दिया। पुलिस अधीक्षक ने उसके रिवाल्वर को नीचे करते हुए कहा—क्या तुम्हारे पास रुमाल है? इंस्पेक्टर के हां कहेने पर पुलिस अधीक्षक ने उससे रुमाल लेकर अपने मुंह पर का थूक पोंछते हुए कहा—जो काम एक रुमाल से हो सकता है, उसके लिए रिवाल्वर की क्या जरूरत!

यदि किसी से प्रशंसा और सम्मान पाकर हम खुश हो जाते हैं और निंदा तथा अपमान पाकर क्षुब्ध, उत्तेजित एवं दुखी हो जाते हैं तो हम गुलाम हैं और जिस प्रकार जानवर चरवाहों द्वारा डंडे से हांके जाते हैं उसी प्रकार हम भी हांके जा रहे हैं। यदि जीवन को सुख एवं प्रसन्नता पूर्वक जीना चाहते हैं तो गुलाम न बनकर अपना मालिक स्वयं बनें और अपने जीवन का रिमोट अपने हाथ में रखें, दूसरों के हाथ में न दें। यदि किसी से अपनी प्रशंसा सुनकर हम खुश हो जाते हैं और निंदा सुनकर क्षुब्ध एवं दुखी हो जाते हैं तो हमने अपने

जीवन का रिमोट दूसरों के हाथ में दे रखा है। अब उनकी मर्जी कि वे हमें खुश रखना चाहते हैं या दुखी। मानो हमारा अपना कोई मूल्य और महत्त्व ही नहीं रह गया है। हम चेतन मनुष्य नहीं, निर्जीव मशीन हैं जो दूसरों द्वारा परिचालित हैं। यह तो सीधे-सीधे गुलामी का जीवन जीना है, फिर भी अहंकार कि हम बड़े ज्ञानी, विद्वान, समझदार हैं और अपना मालिक स्वयं हैं।

यह तो दुनिया है। यहां सबके हानि-लाभ की सूझ-समझ अलग-अलग है। किसी को किसी का अपमान करने, नुकसान पहुंचाने में अपना लाभ दिखता है तो किसी को किसी का सम्मान करने, काम बनाने में अपना लाभ दिखता है। किसी से अपमान-सम्मान पाकर आप उसका उत्तर देना चाहते हैं और प्रसन्न, शांत रहना चाहते हैं तो सम्मान का उत्तर प्रेम, सेवा, सम्मान पूर्वक ही दें, जिसे पाकर सामने वाला भी खुश-प्रसन्न हो जाये, परंतु अपमान का उत्तर भी प्रेम-सम्मान पूर्वक ही दें। यदि ऐसी तैयारी एवं स्थिति नहीं है तो अपमान का उत्तर तत्काल न देकर चुप रह जायें। इसी में ही आपकी तथा सामने वाले की शांति निहित है।

एक साधक ने अपने गुरु से पूछा—गुरुदेव! किसी से अपमान तथा दुर्व्यवहार पाकर शांतिपूर्वक साधना करनी हो तो क्या करें? गुरु ने उत्तर दिया—बेटा! यदि शांतिपूर्वक साधना करना चाहते हो तो किसी से भी किसी प्रकार का अपमान एवं दुर्व्यवहार पाकर एकदम मौन रहो। यदि ऐसा संभव न हो और अपमान का उत्तर देने का ही मन हो तो उसका उत्तर चौबीस घंटे के बाद ही देना।

अपमान, दुर्व्यवहार एवं प्रतिकूलता मिलने पर प्रायः आदमी का मन क्षुब्ध और उत्तेजित हो जाता है और तत्काल उत्तर देने पर जबान से ऐसी बातें निकल सकती हैं, जो किसी के लिए हितकर न होकर सबके लिए अहितकर हो और अंत में पश्चाताप करना पड़े।

यदि कोई हमें गुलाम कहकर पुकारे तो हमें अच्छा नहीं लगेगा, हम नाखुश और क्रुद्ध हो जायेंगे। कोई अपने को गुलाम कहलाना पसंद नहीं करता, परंतु स्वयं सोचें, गाली का उत्तर गाली से, अपमान का उत्तर

अपमान से, क्रोध का उत्तर क्रोध से देकर हमने क्या सिद्ध किया है! मालिक तो वह है जो कटु से कटु गाली सुनकर और अपमान पाकर भी क्षुब्ध न होकर शांत रहता है। यही तो जीवन जीने की असली कला है। आर्ये, इसके लिए नीचे का उदाहरण देखते हैं—

रमेश और सुरेश दोनों में बड़ी मित्रता थी। एक बार किसी बात को लेकर रमेश से सुरेश की अनबन हो गयी और उसके मन में रमेश के लिए शत्रुता की गांठ पड़ गयी। अब सुरेश के मन में हर समय यह होने लगा कि रमेश को कैसे अपमानित और दुखी करूं। इसी भाव को लेकर एक दिन सुरेश ने रमेश को फोन किया और गाली देने लगा। लगातार कई मिनट तक गाली देने के बाद भी रमेश की ओर से जब कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली तब सुरेश ने रमेश से कहा—अरे! तुम्हें मेरी बातें सुनायी पड़ रही हैं या नहीं। तुम कुछ बोलते क्यों नहीं? तब रमेश ने धीरे से यह कहकर कि भाई! तुमने गलत नंबर लगा दिया है, लाइन काट दी। यही है अपना मालिक होना। ऐसे व्यक्ति को कौन दुखी कर सकता है?

दुनिया में हर आदमी के पास मन है और हर आदमी को हर समय अपने मन से काम लेना पड़ता है तथा कुछ बातों को याद रखना पड़ता है और कुछ बातों को भूल जाना पड़ता है। किन बातों को याद रखना है और किन बातों को भूल जाना है, इसके लिए हर आदमी स्वतंत्र है, कोई किसी को विवश नहीं कर सकता। सुखी जीवन जीने के लिए तथा मन को प्रसन्न, शांत, अनुद्विग्न बनाये रखने के लिए आवश्यक है गलत बातों को भुला देना और अच्छी बातों को सदैव याद रखना। गलत बातों को भुलाकर अच्छी बातों को याद रखना अच्छे मन की तथा अच्छी बातों को भुलाकर गलत बातों को याद रखना गलत मन की पहचान है।

आपने देखा होगा कि हर गांव में मंदिर एवं कब्रिस्तान दोनों होते हैं। आदमी को दोनों की जरूरत होती है। मंदिर में किसी मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाती है और उसे देवता-भगवान मानकर लोग उसकी पूजा

करके प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। किंतु कब्रिस्तान में मुरदे को दफनाया जाता है और लोग वहां खुशी से जाना नहीं चाहते। एक बार मुरदे को कब्रिस्तान में दफनाने के बाद कोई उसे उसमें से निकालकर देखता नहीं है। इसी प्रकार आप भी अपने मन में मंदिर और कब्रिस्तान दोनों बनाकर रखें और अपने मन के मंदिर में दूसरों के सद्गुणों, अच्छाइयों की प्रतिष्ठा करते रहें तथा उनकी याद करते रहें। इससे आपका मन प्रसन्न रहेगा और दूसरों के प्रति सद्भाव से भरा रहेगा। दूसरी तरफ अपने मन के कब्रिस्तान में दूसरों द्वारा प्राप्त अपमान, दुख, दुर्व्यवहार को तथा उनके दोषों-बुराइयों को दफनाते रहें और जिस प्रकार मुरदे को एक बार दफना देने के बाद उसे निकालकर देखा नहीं जाता क्योंकि वह केवल सड़ेगा और दुर्गंध तथा बीमारी फैलायेगा इसी प्रकार दूसरों के दोषों-बुराइयों, उनसे प्राप्त अपमान-दुर्व्यवहार को सदा के लिए दफना दें, उनकी याद न करें, क्योंकि उनकी याद मन की अशांति एवं उत्तेजना का कारण बनेगी, सिवा हानि के फायदा कुछ नहीं होगा। यदि आप ऐसा कर लेते हैं तो आपको कोई दुखी नहीं कर पायेगा। आप अपना मालिक स्वयं बन जायेंगे।

जीवन के बाह्य भौतिक धरातल पर बाहरी भौतिक चीजों की आवश्यकता है इससे इंकार नहीं किया जा सकता। भौतिक वस्तुओं के अभाव में जीवन-निर्वाह में कठिनाई होती है और भौतिक वस्तुओं की वृद्धि से जीवन निर्वाह में सरलता-सुविधा होती है, परंतु भौतिक वस्तुओं के अभाव-वृद्धि से आंतरिक सुख-दुख, शांति-अशांति का कोई संबंध नहीं है। इसका सीधा संबंध सकारात्मक सोच, सही समझ, सहनशीलता, अनुद्विग्न मन की कमी-बेशी से है। सकारात्मक सोच, सही समझ, सहनशीलता, प्रतिक्रियाविहीन अनुद्विग्न मन के मालिक बनकर अपना मालिक स्वयं बनें तथा दूसरों के साथ प्रेम, सेवा, समता, मधुरवाणी पूर्वक कोमल व्यवहार रखें, फिर आपके मन में सब समय प्रसन्नता एवं शांति बनी रहेगी। यही जीवन जीने की सुंदर कला है।

—धर्मेन्द्र दास

कबीर वाणी की कसौटी पर धर्मशास्त्र

लेखक—श्री धर्मदास

(गतांक से आगे)

वैदिक विधान के अनुसार यज्ञों एवं पितरों तथा देवगण को संतुष्ट करने के लिए जो पशुबलि दी जाती है वह हिंसा नहीं होती। इस कथन का सहारा लेकर कबीरयुग में और यदा-कदा आज भी कामाख्या (असम), कोलकाता (काली बाड़ी) आदि तांत्रिक एवं शक्तिपीठों में पशुओं की बलि जारी है। यद्यपि उस काल के कतिपय धर्मशास्त्रकारों ने मांस रहित चावल युक्त भोजन का विधान दिया तथापि मांसाहार का बहाना पंडित निकाल ही लिया करते थे। अहिंसा के प्रबल पक्षधर कबीर देव ने जनसाधारण के बीच पशुबलि को छोड़ने की प्रेरणा दी—

माटी के करि देवी देवा, काटि काटि जीव देइया जी
जो तोहरा है साँचा देवा, खेत चरत क्यों न लेइया जी

(बी.श. 70)

डॉ. काणे द्वारा विष्णु पुराण (3/2/7), विष्णु धर्मसूत्र (71/17-21), बृह. उप. (1/24/12) आदि के उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है¹ कि जो पहले धर्म-कृत्य कहा जाता था अब लोगों के लिए घृणास्पद एवं दुःखदायक हो गया है। उन शास्त्रों में प्रयुक्त शब्द 'लोकविद्विष्ट या लोकविकृष्ट' हैं जिनका अर्थ है लोगों द्वारा गर्हित या निन्दित न कि 'शिष्ट-विद्विष्ट'। उनका मत है कि, "चाहे कट्टर विद्वान लोग (पण्डित) इस बात पर बल दें कि लोगों को वेद एवं स्मृतियों द्वारा घोषित धर्म का अनुसरण करना चाहिए, किन्तु जनसाधारण को चाहिए कि वे उन आचारों का परित्याग कर दें जिन्हें वे गर्हित एवं कुत्सित समझते हैं। यह धारणा उन ऐतिहासिक तथ्यों की ओर संकेत करती है कि आचरणों एवं व्यवहारों का कालान्तर में परिवर्तन होता है और जन-साधारण वेदविहित बातों को भी छोड़ देता है।"²

कबीर देव उपर्युक्त धर्मशास्त्रों एवं निबन्धों को नहीं पढ़ पाये होंगे। फिर भी उन्होंने स्वविवेक एवं चिन्तन के आधार पर अनुपयुक्त शास्त्र-समर्थित आचरणों एवं व्यवहारों—वर्ण-जाति भेद, ऊँच-नीच की भावना, हिंसा-पशुबलि, मांसाहार, अस्पृश्यता, सांप्रदायिक द्वेष आदि को त्याग देने का संदेश दिया। संत कबीर से प्रेरित होकर वेदों एवं स्मृतियों में आस्था रखने वाले अनेक पंडित-आचार्यों ने वैदिक-मार्गों का परित्याग किया और उन्हीं की राह पकड़ ली।

दक्षिण भारत के विद्वान ब्राह्मण सर्वानंद काशी के पंडितों से शास्त्रार्थ में सर्वजयी होकर सर्वाजीत कहे गये। कबीर साहेब के सत्संग एवं ज्ञान से ऐसे प्रभावित हुए कि उनके शिष्य हो गये। काशी कबीर चौरा गद्दी पर आसीन होने पर प्रथम पीठाधीश श्री श्रुतिगोपाल साहेब के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्री भगवान साहेब प्रसिद्ध हरिव्यासी (निंबार्काचार्य मत के) वैष्णव संत थे। सर्वप्रथम कबीर देव से पिथौराबाद में मिले। उनके विचारों से प्रभावित होकर कबीर देव से दीक्षित हो गये। धनौती मठ (बिहार) की स्थापना किये। जगन्नाथपुरी के पुजारी जगरदत्त के पुत्र जागू साहेब हुए। जगन्नाथपुरी में ही कबीर साहेब से मिले और उनके शिष्य बन गये।

कबीर साहेब के समय में उनके धार्मिक एवं सामाजिक व्यवहारों में परिवर्तन के संदेश सुन कुछ पंडित, जो अपने को सनातनी कहते थे, ऐसा कहने लगे कि कबीर द्वारा निर्देशित परिवर्तन शास्त्रों के विरुद्ध हैं। यहां तक कि बीसवीं शती के विद्वान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संत कबीर द्वारा निर्देशित परिवर्तन की विचारधारा को लोकधर्म विरोधी ठहराया और कहा कि "उनके (कबीर) वचनों से जनता की चित्तवृत्ति में ऐसे घोर विकार की आशंका है जिससे समाज विश्रुंखल हो जायेगा, उसकी मर्यादा नष्ट हो जायेगी। गोस्वामी जी को

1. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. 1651

2. वही, पृ. 1661

निर्गुणवादियों की बानी में लोकधर्म की उपेक्षा का भाव स्पष्ट दिखाई पड़ा। साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि बहुत से अनधिकारी और अशिक्षित वेदांत के कुछ चलन शब्दों को लेकर, बिना उसका तात्पर्य समझे यों ही ज्ञानी बने हुए मूर्ख जनता को लौकिक कर्तव्यों से विचलित करना चाहते हैं और मूर्खता-मिश्रित अहंकार की वृद्धि कर रहे हैं। इसी दशा को लक्ष्य करके उन्होंने (गोस्वामी जी) इस प्रकार के वचन कहे हैं¹—

श्रुतिसम्मत हरिभक्ति पथ संजुत बिरति विवेक।

तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥ 1 ॥

साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।

भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं वेद पुरान ॥ 2 ॥

बादहिं शूद्र द्विजन सन हम तुमतें कछु घाटि।

जानहिं ब्रह्म सो बिप्रवर आंखि देखावहिं डांटी ॥ 3 ॥

उपर्युक्त वक्तव्य के द्वारा जिन्हें 'चित्तवृत्ति विकृत करने वाला', 'समाज को विश्रुंखल करने वाला', 'मर्यादा नष्ट करने वाला', 'अनधिकारी', 'अशिक्षित', 'ढोंगी ज्ञानी' आदि अलंकारों से शुक्ल जी ने नवाजा है वे 15वीं-16वीं शती के निर्गुणवादी संत थे जो प्रायः समाज के निम्नवर्ग के थे। उनके अनुयायियों के लिए 'मूर्ख जनता' कहा जिन्हें लौकिक कर्तव्य से विचलित करने एवं उनमें मूर्खता मिश्रित अहंकार वृद्धि करने के आरोप लगाये। स्पष्टतः आगे चलकर कबीर-दादू का नाम भी लिया है। विवेचनाधीन प्रसंग शुक्ल जी का मन्तव्य है गोस्वामी जी की रचना नहीं। वैसे भी गोस्वामी जी का देहान्त संवत् सोलह सौ असी (1680) में हुआ था और शुक्ल जी ने संशोधित संस्करण संवत् 1997 में प्रकाशित किया था। इस प्रकार गोस्वामी जी शुक्ल जी की अभिव्यक्ति से 317 वर्ष पहले संसार त्याग चुके थे। गोस्वामीजी के समय में मुगल शासन था और शुक्ल जी जब उक्त पुस्तक को संशोधित कर रहे थे उस समय भारत में स्वतंत्रता आंदोलन अपने चरम पर था। महात्मा गांधी और डॉ. आंबेडकर मानवतावादी विचारों के प्रबल समर्थक राष्ट्र-नेता थे। गांधी

अस्पृश्यता निवारण तथा सांप्रदायिक सद्भावना का मूलमंत्र लेकर सभी वर्गों को स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित कर रहे थे तो वहीं डॉ. आंबेडकर अछूत, उपेक्षित एवं बहिष्कृत समाज को मंदिर-प्रवेश कराने, सार्वजनिक तालाबों से पानी पिलाने तथा उनको शिक्षा दिलाने जैसे सामाजिक अधिकार दिलाने के लिए देश में एवं गोलमेज कांफ्रेंस में विद्वतापूर्ण तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। यह भी उल्लेखनीय है कि डॉ.पा.वा. काणे, जिन्होंने हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र अंग्रेजी में लिखा था, वे चितपावन ब्राह्मण थे और पूना विश्वविद्यालय के कुलपति, बंबई हाईकोर्ट के वकील तथा आंबेडकर के अध्यापक रहे थे।² यह भी संयोग है कि शुक्ल जी का देहावसान 1941 ई. में हुआ था और राष्ट्रकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का भी उसी वर्ष। डॉ. काणे एवं गुरु टैगोर के परिप्रेक्ष्य में यदि आचार्य शुक्ल जी के मन्तव्य की व्याख्या की जाये तो पता चलता है कि डॉ. काणे, आंबेडकर, गांधी एवं टैगोर उस श्रेणी के व्यक्ति थे जो लोग भविष्यद्रष्टा थे तो आचार्य जी जैसे पश्चगामी (Retrograde) लोग अतीत की परंपरा पर अपनी संतान के भविष्य को संवारने पर विश्वास रखते थे। गोस्वामी जी की चौपाइयों को उद्धृत करने के पीछे शुक्ल जी के विचारों एवं सामाजिक दृष्टिकोण का अनुमान होता है। चौपाइयों का अर्थ है : (1) वेद समर्थित विचार ही हरिभक्ति का मार्ग है, मोहवश मनुष्य उसपर नहीं चलते और अनेकों नये-नये पंथों की कल्पना करते हैं। (2) साखी, शब्द, दोहरा (दोहा) कहते हैं; कहानी-कथा बनाकर कलियुग में भक्ति की नयी परिभाषा गढ़ते हैं तथा वेदों एवं पुराणों की निंदा किया करते हैं। (3) शूद्र द्विजों से विवाद करते हैं और कहते हैं कि हम क्या तुमसे कुछ कम हैं? जो ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। ऐसा कहकर वे उन्हें डांटकर आंखें दिखलाते हैं।

इसमें दो राय नहीं कि कबीर साहेब ने पौराणिक आचरण पर ही अधिक प्रहार किया है। बीजक में करीब

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, (संस्करण 2007) पृ. 113-114।

2. हिन्दू कोड बिल और डॉ. आंबेडकर, लेखक—सोहनलाल शास्त्री विद्यावाचस्पति, पृ. 311

एक दर्जन पद ऐसे हैं जिनमें सीधे 'पंडित' या 'पांडे' को सम्बोधित करके प्रश्न पूछते हैं कि छूत कहां से आ गयी? ब्राह्मणी से जन्म पाना उत्तम है तो ईश्वर ने तुम्हें जन्म लेने के लिए कोई दूसरा मार्ग क्यों नहीं बनाया? इस धरती के पग-पग पर अनादिकाल से मूरदे गाड़े गये हैं जिस पर हम तुम सब बैठे हैं फिर कोई अछूत कैसे? तुम अछूत क्यों नहीं? 'ब्राह्मण होय के ब्रह्म न जाने'—कबीर साहेब ने क्या कह दिया, गोस्वामी जी ने कबीर जैसे संतों को काकभुशुंडि के मुंह से शूद्र के नाम पर दर्जनों गालियों से आदर किया। ऊपर शुक्लजी ने गोस्वामी जी के सुर में कबीर आदि संतों को गालियां भी दी जैसे तुलसीदास जी ने उन्हें लाइसेंस दे दिया हो। शुक्लजी को प्रेरणा इससे मिली—“पूजिअ बिप्र सील गुणहीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥” तभी तो वे संतों के लिए अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किये।

यह तो स्पष्ट है कि गोस्वामी जी की चौपाइयों के उदाहरण से शुक्लजी ने अपना तीर कबीर साहेब एवं निर्गुणवादियों पर दागे हैं किन्तु तुलसी और शुक्ल के युग में भारी अंतर है। शुक्ल अंग्रेजों के गुलाम थे और तुलसी मुगलों के द्वितीय दर्जे के नागरिक। गोस्वामीजी ने दशरथ-पुत्र श्रीरामचन्द्र को परम ब्रह्म सिद्ध करने के उद्देश्य से संत कबीर की पंक्ति “दशरथ सुत तिहुं लोकहि जाना, राम नाम का मर्म है आना” के प्रति उत्तर में लिखा “तुम्ह जो कहा राम कोउ आना”—ऐसा पिशाच-ग्रसित, पाखंडी, हरिपद विमुख अधम लोग कहते हैं, जो सच-झूठ कुछ भी नहीं जानते: “कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिशाच। पाखंडी हरिपद विमुख जानहिं झूठ न साँच॥” रामभक्त तुलसी कबीर की बात से बौखलाकर गालियां देते हैं, कुछ हद तक स्वाभाविक प्रतिक्रिया समझकर भुला दिया जा सकता है किन्तु शुक्ल जी के साथ वैसी बात नहीं थी। वे साहित्यकार थे। एक प्रतिष्ठित शिक्षा केन्द्र के आचार्य थे। उनसे अपेक्षा थी कि वे एक निष्पक्ष विश्लेषण देते और तर्कसंगत वाद-विवाद-परिवाद को बढ़ावा देकर आगामी पीढ़ी को प्रगतिशील सोच विकसित करने में प्रेरक बनते। किन्तु हजारों वर्ष पुरानी मान्यताएं जो वेदों,

धर्मसूत्रों, स्मृतियों एवं पुराणादि धर्मशास्त्रों में लिखे थे उन्हें आधुनिक युग में लोकधर्म सिद्ध करना एवं समाज को उन पर चलने का निर्देश करना काल-चक्र को पीछे गतिशील करने का प्रयास था।

शुक्ल जी लिखते हैं कि गोस्वामी जी “रामोपासक वैष्णव अवश्य थे, पर स्मार्त वैष्णव थे।”¹ स्मार्त शब्द का अर्थ (आक्सफोर्ड हिन्दी-इंगलिश डिक्शनरी) है—*following smirti in doctrine and practice*—‘स्मृति ग्रंथों के सिद्धान्त को मानना तथा उनके अनुसार आचरण करना; तथा an orthodox Hindu ‘एक रुढ़िवादी हिन्दू’। इससे सिद्ध है कि गोस्वामी जी मनुस्मृति—जो आज से 2200 वर्ष पूर्व बनी थी—की धर्मव्यवस्था का अनुसरण करते थे। मनु. (1/90) कहता है कि सृष्टि की सुव्यवस्था के लिए ब्रह्मा जी ने शरीर के चार अंगों—मुख, बाहु, उरु तथा चरण की तरह सभी लोगों को चार वर्णों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में बांटा तथा उनके अलग-अलग कर्मों को निर्धारित किया। (सर्वस्वास्थ्य तु सर्गस्य... पृथक्कर्माण्य-कल्पयत्) मनु. के अनुसार वेद पढ़ना, यज्ञ करना, दान लेना ब्राह्मण का कर्म; प्रजा की रक्षा करना, यज्ञ करना, दान देना और विषय भोगों में लिप्त रहना क्षत्रिय का कर्तव्य तथा वैश्य का कर्म है—व्यापार करना, खेती करना, पशुपालन आदि। परन्तु प्रभु ने शूद्रवर्ण के लिए एकमात्र कर्तव्य बताया है—तीनों वर्णों की सेवा करना।² अर्थात् राज-पाट, भोग-विलास, धन, वैभव पर द्विजों का अधिकार स्मार्त धर्म है। उनके अनुसार शूद्रों का लोकधर्म है सेवा—कपड़ा धोना, शौचालय साफ करना, तेल पेरना, पैर दबाना, कुली का काम करना, जुलाहागीरी, दर्जीगीरी। कबीर-दादू जैसे निर्गुणवादी संत शूद्रधर्म छोड़कर व्यासगद्दी पर बैठने लगे, गुरु बन बैठे, उपदेश देने लगे ये सब पंडितों के लिए असहनीय हो गया। गोस्वामी जी समझते थे कि मनु की व्यवस्था से मुगलशासन से मुक्ति मिल जायेगी

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 109।

2. एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामन सूयया (मनु. 1/90-93)।

परन्तु अंग्रेजों ने मुगलों से सत्ता छीन लिया। भारत अंग्रेजों का गुलाम 200 वर्षों तक रहा। गांधीजी के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई लड़ी गई। इस बीच अंग्रेजों को विश्वयुद्ध में भाग लेना पड़ा। भारत को स्वराज की अनुमति देने की बात ब्रिटिश सरकार सोचने लगी थी। भारतीय संविधान के स्वरूप पर वार्ता करने के लिए 1932 ई. में गोलमेज कांफ्रेंस बुलाई गयी थी।¹ उसी समय ब्रिटिश सरकार द्वारा कम्प्युनल एवार्ड घोषित हुआ जिसके द्वारा दलितों के राजनीतिक संरक्षण की मांग मान ली गयी थी। गांधी ने माना कि यह हिन्दुओं को बांटने की एक साजिश थी। वे पूना में अनशन पर बैठ गये। गांधी और आंबेडकर के बीच 25 दिसम्बर 1932 ई. को विधिवत पूना पैक्ट समझौता पर नेताओं के हस्ताक्षर हुए। फिर हिन्दुओं का एक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन के सभापति पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने कहा कि गांधी जी का लक्ष्य अस्पृश्यता को पूर्णतया मिटाना है। इसमें हम सबको उनको सहयोग देना है।² कतिपय सवर्ण मानसिकता द्वारा घृणित प्रचार भी किया गया। तथापि समाज सुधार के क्षेत्र में ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, डेक्कन शिक्षा समिति, थियोसोफिकल समिति, रामकृष्ण मिशन आदि 1930-40 ई. के दशक में सामाजिक परिवर्तन के द्वारा स्वतंत्र भारत का निर्णय करने में कटिबद्ध थे।³ शुक्ल जैसे लोग अपवाद थे।

महात्मा गांधी ने अपनी विचारधारा का विवरण स्वयं दिया—(ग्रंट वर्क्स ऑफ मा. गांधी) है— वंचितों-दलितों के पूर्ण अधिकारों को लौटाये बिना 'स्वराज' अकल्पनीय है। हम ब्रिटिश साम्राज्य के पैरिअ (अछूत) बन गये हैं क्योंकि हमने अपने बीच अछूतों का सृजन किया है। हम स्वराज्य पाने के लिए अनुपयुक्त रहेंगे जब तक हिन्दुस्तान की जनसंख्या के पंचमांश को बन्धुआ बनाकर रखेंगे (557)। उन्होंने इस

1. एन एडवांस हिस्ट्री आफ इंडिया, डा. कालिकिकर दत्त, पृ. 911
2. पूना पैक्ट, शीलप्रिय बौद्ध पृ. 1141
3. एन एडवांस हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 9381

विषय पर धर्मशास्त्रों के विधान के संबंध में अपना मत इस प्रकार रखा "सुधार स्वराज के बाद नहीं आना है किन्तु पहले होना है। अस्पृश्यता धर्म का दण्ड-विधान नहीं है, यह एक शैतानी चाल है। शैतान सदैव धर्मग्रंथों का उदाहरण देता है। किन्तु धर्मग्रन्थ कभी भी विवेक एवं सच्चाई से श्रेष्ठ नहीं हो सकता। वे विवेक को शुद्ध करने एवं सच को उजागर करने के मकसद से बने हैं। मैं किसी बेदाग अश्व की आहुति देने नहीं जा रहा हूँ क्योंकि वेदों ने बलि की स्वीकृति दी है, सराहा है तथा बलि देने का विधान किया है। मेरे लिए वेद दिव्य एवं अलिखित ग्रंथ हैं।

उपर्युक्त संदर्भों से समझना आसान है कि स्वतंत्रता के पूर्व भारतवर्ष के वातावरण में युग परिवर्तन की बयार आंधी-तूफान बन चुकी थी। तभी (प्रथम संस्करण 1929, द्वि. सं. 1939 ई.) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष के उपर्युक्त मत को गांधी एवं अन्य द्वारा संचालित आंदोलन को तत्कालीन विचारधारा के रथ को दो-ढाई हजार वर्ष पीछे ढकेलने का एक कुत्सित प्रयास के रूप में देखना अनुचित नहीं। नामवर सिंह की किताब 'दूसरी परम्परा की खोज' से ज्ञात होता है कि शुक्ल जी का एक प्रतिक्रियावादी गुट विश्वविद्यालय में था जिसने डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी तक को विश्वविद्यालय से दो-दो बार निकलवाया। इसके पीछे भावना थी कि द्विवेदी जी कबीर को लोकधर्म के संवाहक मानते थे जबकि शुक्ल जी का गुट तुलसीदास को लोकधर्म का रक्षक मानता था। श्री सिंह लिखते हैं कि 'इतिहास' के संशोधित और प्रबंधित संस्करण (1940) में आगे चलकर शुक्ल जी ने इतना तो स्वीकार किया कि "मनुष्यता की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्म-गौरव का भाव जगाया" लेकिन उस बात से 'तुलसीदास' नामक पुस्तक (1923) में पहले की लिखी इस बात का परिहार नहीं होता कि कबीर आदि निर्गुणिया सन्त लोक-विरोधी थे। (उक्त पुस्तक पृ. 44) सदी के चौथे दशक में विद्रोह फक्कड़पन के ही किसी-न-किसी रूप को लेकर साहित्य में प्रकट हुआ था। इसका एक रूप निराला के 'कुकुरमुत्ता' (1940)

के बड़बोलेपन में है तो दूसरा रूप राहुल सांस्कृत्यायन के 'वोल्गा से गंगा' (1942) नामक कथा कृति में है जो भारतीय इतिहास की धक्केमार क्रान्तिकारी व्याख्या प्रस्तुत करती है। (पृ. 53) इस दौर के विद्रोह को यदि अपने अतीत से कोई नैतिक समर्थन मिल सकता है तो केवल कबीर से। जिस तरह व्यक्तिगत और सामाजिक पाखण्ड के प्रत्येक रूप के विरुद्ध आक्रोश इस दौर में था उसकी प्रतिध्वनि कबीर में ही सुनी जा सकती थी (पृ. 54)। कबीर साहेब के क्रान्तिकारी स्वरूप को पहचानने वाले सबसे पहले नाभादास जी थे जिन्होंने भक्तमाल में लिखा—'कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षटदरसनी।' बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में द्विवेदी जी ने इस रूप को सराहा।

वस्तुतः शुक्लजी और द्विवेदी जी समकालीन थे तथा पहले शुक्लजी और पीछे द्विवेदी जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष हुए थे किन्तु उन दोनों की सोच में भारी अंतर था। मानस की 300 साल पुरानी व्यवस्था शुक्ल जी के लिए आदर्श वाक्य थे जो 2200 साल पुराना स्मृति विधान थे। वहीं द्विवेदी जी कबीर मत को आधुनिक समाज के लिए उपयोगी समझते थे। वल्लभाचार्य (1479-1531) कृष्ण उपासक और तुलसी (1532-1623) रामोपासक हैं जो अपने समय की समस्याओं के समाधान के लिए अलग-अलग उपायों का निर्देश करते हैं। दोनों के समय भारत में इस्लामिक सत्ता दृढ़ थी। वल्लभाचार्य 'कृष्णाश्रय में लिखते हैं कि 'देश म्लेच्छाक्रान्त है, गंगादि तीर्थ दुष्टों द्वारा भ्रष्ट हो रहे हैं, अशिक्षा और अज्ञान के कारण वैदिक धर्म नष्ट हो रहा है, सत्पुरुष पीड़ित हैं तथा ज्ञान विस्मृत हो रहा है, ऐसी स्थिति में एकमात्र कृष्णाश्रय में ही जीवन का कल्याण है।'¹ तुलसीदास जी की समस्याएं कुछ अलग थीं—

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सद्ग्रंथ।

दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ ॥

उ.का. 97 (क)

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी ॥

द्विज श्रुतिबेचक भूप प्रजासन।
कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥ 97 ॥ (1)

सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना।

मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥ 98 ॥ (1)

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा।

स्वपच किरात कोल कलवारा ॥

नारि मुई घर संपति नासी।

मूड़ मुड़ाइ होहि संन्यासी ॥ 99 ॥ (3)

सूद्र करहि जपतप व्रत नाना।

बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥ 99 ॥ (5)

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि उनकी समस्याएं म्लेच्छाक्रांत होने से नहीं बल्कि शूद्राक्रांत थीं, जैसे शूद्रों का भक्ति मार्ग, बैरागी होने, उपदेश देने, व्रत करने, जनेऊ पहनने आदि से थीं।

“बरन धर्म...निगम अनुसासन” में उनका दुखड़ा प्रकट होता है। समाज वर्णाश्रम नहीं मानता, सब नर-नारी वेद के विरोधी बन गये। ब्राह्मण वेद बेंचक बन गये तथा राजा प्रजा को खाने वाला है। इससे लगता है कि कुछ ब्राह्मण वेद-व्यवस्था को टुकरा रहे थे। यह भी उनके लिए चिंता का विषय था।

उपर्युक्त सामाजिक वातावरण का चित्रण उनकी विचारधारा का परिचायक है। सामंत शाही—राजा-क्षत्रिय, व्यवस्थापक ब्राह्मण की स्थापना करना उनका स्वप्न था। ऐसी राजसत्ता, जो वर्णाश्रम पर चले, जहां वेद-पुराण के वाक्य आदर्श वाक्य बनें, उस राज्य में उपेक्षित वर्ग मंदिर प्रवेश न करें और न उन्हें साधु बनने का अधिकार मिले। शुक्ल जी जैसे लोग आजाद भारत को गोस्वामीजी के स्वप्न के अनुरूप निर्माण के समर्थक थे। लेकिन वे भूल गये थे कि तब तक 300 साल से ऊपर समय बीत चुका था। मानस काल का म्लेच्छ-मुसलमान राज तबतक अंग्रेजों के हाथों में लगभग 150 साल से था। ब्रिटिश सरकार भारतीय नेतृत्व को सत्ता हस्तान्तरित करने के लिए मन बना रही थी। तत्कालीन राजनेता यह घोषित कर रहे थे कि स्वतंत्र भारत में जनता के लिए, जनता के द्वारा और जनता की सरकार होगी। नयी राजव्यवस्था में राजा और रंक का एक मौलिक नागरिक अधिकार तथा समान दण्डविधान होगा। नयी व्यवस्था होगी जिसमें न कोई जन्मजात ऊंचा होगा और न कोई नीचा।

—क्रमशः

1. दूसरी परम्परा की खोज, पृ. 71-72।

बीजक चिंतन

देह-गेह तुम्हारे नहीं हैं

शब्द-85

भूला लोग कहें घर मेरा ॥ 1 ॥

जा घर में तू भूला डोले, सो घर नहीं तेरा ॥ 2 ॥
हाथी घोड़ा बैल बाहना, संग्रह कियो घनेरा ॥ 3 ॥
बस्ती मासे दियो खदेरा, जंगल कियो बसेरा ॥ 4 ॥
गाँठी बाँधि खर्च नहीं पठयो, बहुरि न कीयो फेरा ॥ 5 ॥
बीबी बाहर हरम महल में, बीच मियाँ का डेरा ॥ 6 ॥
नौ मन सूत अरुझि नहीं सुरझे, जन्म जन्म उरझेरा ॥ 7 ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, यह पद का करहु निबेरा ॥ 8 ॥

शब्दार्थ—बाहना = वाहन, सवारी। घनेरा = बहुत। बीबी = विवाहिता पत्नी, सद्वृत्ति। बाहर = पांच विषय, जगत। हरम = अंतःपुर, स्त्रियों के रहने का घर, रखेल बनायी हुई बाँदी, यहाँ अर्थ रखेल या वेश्या ही है, कुवृत्ति। मियाँ = जीव। डेरा = पड़ाव, आसन, स्थिति। नौ मन = पांच विषय तथा चतुष्टय अंतःकरण, अथवा पांच विषय, तीन गुण और मन। यह पद = प्रस्तुत शब्द, निजस्वरूप चेतन।

भावार्थ—वे लोग भूले हैं जो कहते हैं कि यह घर मेरा है ॥ 1 ॥ जिस घर के अहंकार में तुम भूले फिर रहे हो वह तुम्हारा नहीं है ॥ 2 ॥ तुमने हाथी, घोड़ा, बैल तथा अनेक सवारियाँ और माया की बहुत चीजें इकट्ठी कर रखी हैं ॥ 3 ॥ परन्तु ध्यान रखो, एक दिन तुम अपने माने हुए मकान एवं बस्ती में से खदेड़ दिये जाओगे और तुम्हारा निवास जंगल में होगा ॥ 4 ॥ जाते समय तुम्हारे घर वाले तुम्हारी गाँठ में बांधकर तुम्हारे लिए कुछ खर्च नहीं भेज सकेंगे और न तुम ही कभी लौटकर कुछ ले जा सकोगे ॥ 5 ॥ तुमने जीवन भर तो वैसे ही अपने आप को छलने का काम किया है जैसे कोई अपनी विवाहिता पत्नी को घर में से निकालकर बाहर कर दे और बाहर से लाकर रखेल या वेश्या को रख ले और उसी में अपना आसन जमाये। तूने अपने हृदय से सद्वृत्ति को निकाल बाहर किया और अपने हृदय में कुवृत्ति टिकाये रखा तथा उसी में आनन्द

माना ॥ 6 ॥ इसका फल यह हुआ कि नौ मन सूत उलझ गया। अर्थात् पांच विषयों में मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंवृत्ति उलझ गये और ये जन्म-जन्मांतरों से उलझते ही रहे। इसे सुलझाने पर ध्यान कभी नहीं दिया गया ॥ 7 ॥ कबीर साहेब कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो, अबकी बार इनसे अपनी आत्मा का छुटकारा कर लो ॥ 8 ॥

व्याख्या—हम एक भूखंड खरीदते हैं। उसका अपने नाम से बैनामा कराते हैं। हम उस पर मिट्टी, ईंट, सीमेंट, लोहे, लकड़ी आदि से मकान खड़ा करते हैं और कहते हैं कि यह मकान मेरा है। व्यवहारतः यह सब ठीक है। इस शरीर के निर्वाह के लिए तथा शरीर के साथियों के लिए यह सब करना पड़ता है, करना चाहिए भी। परन्तु जरा इस पर भी ध्यान दो कि अंततः यह सब तुम्हारा नहीं है। जिस भूखंड पर मकान का ढाँचा खड़ा है न वह तुम्हारा है और न मकान का ढाँचा तुम्हारा है। जिस जमीन का तुमने अपने माने हुए नाम पर बैनामा करवाया है, उस पर आज तक करोड़ों लोगों का कब्जा हो चुका है और उनसे छूट चुका है। जमीन का बैनामा कराने वाले कुछ दिनों में उसी जमीन में दफना दिये जाते हैं। जमीन का बैनामा कराते तथा जमीन पर कब्जा करते समय मानो जमीन हंसती है कि बेवकूफो, तुम मेरा बैनामा क्या कराओगे, मैं तुम्हारा बैनामा करा लूंगी। जमीन के करोड़ों मालिक बनकर आये और इसी जमीन में समा गये।

ध्यान रहे, जिस मकान को तुम अपना मानते हो उसमें हजारों चींटियाँ, कीड़े, मच्छर, छिपकिलियाँ तथा अन्य जानवर रहते हैं, जो उस पर अपना जन्मजात अधिकार मानते हैं। तुमने तो केवल मकान बनवाया है, परन्तु वे तो उस मकान में पैदा हुए हैं। जो तुम्हारे घर में पैदा होता है वह तुम्हारे घर का हकदार हो जाता है, फिर वे कीड़े-मकोड़े जो उसी घर में पैदा हुए हैं उस घर के हकदार क्यों नहीं! अतएव जिसे तुम अपना घर मानते हो उसे हजारों-लाखों जीव-जन्तु अपना घर मानते हैं और सब थोड़े दिनों में उसी घर या जमीन में लीन हो जाते हैं।

ध्यान रखो, घर केवल कुछ दिन रहने की धर्मशाला है। घर बनाकर अहंकार नहीं करना, उसे अपना नहीं

मानना। तुम्हें पता है कि दादा-बाबा अपने घर छोड़-छोड़कर चले गये हैं। तुम कब तक इस घर में रहने वाले हो! “इस घर की यह रीति है, एक आवे एक जाय।” अतएव जो एकदम बदहवास है, वही कहता है कि यह घर मेरा है। जो सत्य को समझता है वह कभी नहीं मान सकता कि यह घर मेरा है। व्यवहार के लिए पूछने पर उसे भले कहना पड़े कि यह मेरा घर है, परन्तु वह अपने हृदय से उसे कभी अपना नहीं मान सकता। जो जाग रहा है वह इस संसार के एक तृण को भी अपना नहीं मान सकता। वो तो जो भूले हैं, नशा खाये हैं, वे मानते हैं कि यह घर मेरा है, यह परिवार मेरा है।

आदमी अपने जीवन में हाथी, घोड़े, बैल, सवारी बहुत इकट्ठा करता है। कबीर साहेब आज होते तो उन्हें सायकल, स्कूटर, मोपेड, कार, जीप, ट्रक आदि के भी नाम लेने पड़ते; परन्तु वे सवारी कहकर मानो इन सबके लिए गुंजाइश कर दिये हैं। हम अपनी क्षमता के अनुसार माया की बहुत वस्तुएं इकट्ठी कर लेते हैं। उनसे केवल देहगुजर लें इतना ही नहीं रहता, किन्तु हम उनमें राग-भोग की दृष्टि रखते हैं, उनके अहंकार में इतराते घूमते हैं। हम अपने घर में कुछ लोहा-लकड़ आदि कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा कर लेते हैं और उसके नशे में चूर रहते हैं। हम चार लोगों के साथ बैठते हैं तब उसी के गीत गाते हैं, हमारे यह है, हमारे वह है।

कबीर साहेब कहते हैं कि भोले, तू इस मकान में से चार दिनों में खदेड़ दिया जायेगा और तेरा निवास तो जंगल में होगा। तू समझ कि यह मकान तेरा क्षणिक निवास है, स्थायी निवास तो जंगल है। एक पेड़ के नीचे एक महात्मा बैठे थे। उधर से एक बना-ठना बाबू घोड़े पर बैठा आ गया। उसने साधु से पूछा—‘बस्ती किधर है?’ महात्मा ने उसे श्मशान की तरफ इशारा कर दिया। वह श्मशान में पहुंचकर बहुत हैरान हुआ। लौटकर पुनः साधु के पास पहुंचा और उन्हें भला-बुरा कहा। महात्मा ने कहा—वही असली बस्ती है। जिसे लोग बस्ती कहते हैं, मैं उसे श्मशान कहता हूँ और जिसे लोग श्मशान कहते हैं, मैं उसे बस्ती कहता हूँ। जहां लोग मरते हों उसे श्मशान कहना चाहिए तथा जहां लोग एक बार बसकर कभी न उजड़ें उसे बस्ती कहना चाहिए। जिसे तुम लोग बस्ती कहते हो वहीं तो लोग

मरते हैं। जिसे तुम लोग श्मशान कहते हो क्या वहां आज तक कोई मरा है? वहां तो लोग आकर बसते हैं, और जो वहां एक बार बस गया, फिर वहां से कभी नहीं उजड़ता। इसलिए लोगों की दृष्टि में जो बस्ती है, वह मेरी दृष्टि में श्मशान है और जो लोगों की दृष्टि में श्मशान है वह मेरी दृष्टि में बस्ती है। वह घोड़ा-सवार बाबू संत की बातों से दंग रह गया। उसने पहले उस साधु को बेवकूफ समझ लिया था, परन्तु अब वह उसके सामने स्वयं बेवकूफ बन गया। मोहलित्त संसार कहता है कि इन महात्माओं की खोपड़ी उलटी होती है। ‘राजा योगी अग्नि जल इनकी उलटी रीति’ यह उदाहरण देता है। परन्तु साधु की खोपड़ी सीधी होती है, क्योंकि वे मोह से परे हैं। उलटी खोपड़ी तो मोहग्रस्त लोगों की होती है। वे जो अपना नहीं है उसे अपना माने बैठे रहते हैं।

ध्यान रहे, चाहे तुम जितना माया का संग्रह कर लो, सब कुछ यहीं छोड़कर अकेला जाना पड़ेगा। एक दिन तुम इस घर से निकाले जाओगे। एक रियासतदार की मौत जब करीब आयी, वे अपने महल से निकालकर अयोध्या ले जाये जाने लगे कि मौत वहीं हो तो अच्छा है। जब वे अपने माने हुए विशाल तथा भव्य भवन से निकालकर कार में लिटाये गये, तब एक बार भवन की तरफ देखकर कहे “अब ‘चन्द्रभवन’ सदा के लिए छूट रहा है।” उन्होंने उस भवन को स्वयं बनवाया था और उसका नाम रखा था ‘चन्द्रभवन’। उनकी ही नहीं, सबकी यही दशा है। चाहे झोपड़ी हो या भवन, सबका निवास उसके लिए चन्द्रभवन है और वह सबका छूटता है।

जब आदमी मर जाता है, तब उसे लोग श्मशान में ले जाकर जला या गाड़ देते हैं या पानी में फेंक देते हैं। पारसी लोग लाश को सूनसान में छोड़ देते हैं, और उसे पशु-पक्षी खा लेते हैं। मरे हुए आदमी के लिए घर वाले गांठी बांधकर कुछ भेज नहीं पाते। भेजने का कोई साधन नहीं है। उसके पास कोई बीमा, पार्सल या मनीआर्डर नहीं जा सकता। यह भी संभव नहीं कि गया हुआ आदमी पुनः लौटकर अपने माने हुए घर से कुछ ले जा सके। अतएव जो आदमी अपने जीवन में सत्कर्म

नहीं कर लेता, वह धोखा खाता है। जीवन में सत्कर्म करने वाला मानो अपनी गांठ में बांधकर अपने साथ ले जाता है। जो सत्कर्म नहीं करता, वह अपना यह जीवन तथा अगला जीवन भी दुखों से भरता है।

मानो एक मियां जी हों, उन्होंने अपनी समझदार तथा श्रद्धालु विवाहिता पत्नी को घर से निकालकर बाहर कर दिया हो और वेश्या को लाकर अपने घर में टिका लिया हो और वे चाहें कि मुझे सुख मिले तो यह उनकी नासमझी है। भूला जीव ऐसा ही करता है। वह अपने हृदय से शील, क्षमा, विचार, संतोष, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि सद्वृत्तियों को निकालकर बाहर कर देता है और राग-द्वेष, विषय-वासना, तृष्णा, अविवेक आदि लाकर बसा लेता है। इस जीव-मियां ने सदगुणों का तिरस्कार कर दुर्गुणों में ही अपना डेरा जमा रखा है। जो व्यक्ति दुर्मति एवं दुर्गुणों में जीता है, उसे कहां चैन मिल सकता है! धन तो लोगों के पास कम-बेश होता है। पेट-परदा सबका चलता है। जीवन में सच्चा सुख वही पाता है जिसके मन में अच्छे विचार हैं और जीवन में सदगुण तथा सदाचार हैं। इनके बिना करोड़पति नहीं, विश्वपति भी हो तो दुखों में पड़ा बिलबिलाता रहेगा। सुख का स्रोत बाहर नहीं है, किन्तु भीतर है। चित्त की स्वच्छता सुख का स्रोत है। इसके बिना सुख कहीं नहीं है।

थोड़ा-सा सूत उलझ जाये तो उसे सुलझाने में बड़ा परिश्रम लगता है, परन्तु यदि नौ मन सूत उलझ जाये तो क्या दशा होगी? ये शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध में मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार उलझ गये हैं। मन पांचों विषयों का निरंतर स्मरण करता है, चित्त उन्हीं का अनुसंधान करता है, बुद्धि उन्हीं में सुख निश्चय करती है तथा अहंकार उन्हीं में जमकर क्रिया करता है। जीव अपने चतुष्टय अंतःकरण से पांचों विषयों में निरन्तर डूबा रहता है, यही नौ मन सूत का उलझना है। इसको थोड़ा दूसरे ढंग से भी समझ सकते हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध इन पांचों विषयों तथा रज, सत, तम इन तीनों गुणों में मन का उलझे रहना मानो नौ मन सूत का उलझ जाना है। दोनों तरीकों से अभिप्राय एक है मन का विषयों में उलझ जाना। कबीर साहेब अपनी सारी

बातें प्रायः रूपकों एवं अलंकारों में कहते हैं। यहां भी उन्होंने नौ मन उलझे हुए सूत की प्रतीकात्मक भाषा में मन का विषयों और तीनों गुणों में उलझने की बात बतायी है। हमारा मन पांचों विषयों तथा तीनों गुणों में क्यों उलझा है? क्योंकि हमने अपनी सद्वृत्ति को बाहर कर दिया है और दुर्वृत्ति को भीतर लाकर टिका लिया है। सदगुरु कहते हैं कि तुम्हारा मन पांचों विषयों तथा तीनों गुणों में उलझ गया है और जन्म-जन्म से उलझता आ रहा है। तुम इसे आज भी नहीं सुलझाना चाहते हो तो यह कब सुलझेगा! यह समझ लो कि मन का पूर्णतया सुलझाव ही जीवन की परम उपलब्धि एवं सर्वोच्च स्थिति है।

इसलिए सदगुरु अंतिम पंक्ति में कहते हैं कि इस पद का निबेरा करो। यहां पद में 'श्लेष' है। पद का अर्थ यह शब्द है तथा पद का अर्थ आत्मस्वरूप है। हम इस शब्द में आये हुए विचारों को समझें और उन्हें समझकर अपनी आत्मा को सबसे छुड़ावें। निबेरा या निबेड़ा के अर्थ हैं—छुटकारा, त्राण, बचाव, एक में मिली वस्तुओं के पृथक होने या किये जाने का काम या भाव, सुलझाव, निबटारा, निर्णय, दूरीकरण, हटाव, पूर्ति, पूरा करना।¹ हमारा मन संसार के विषयों में फंसा है। राग या द्वेष में पड़े रहना मन का फंसना है। इसी से सारे भय, चिन्ता, शोक-मोह एवं उपद्रव हैं।

हमें यह सोचना चाहिए कि हम अपने मन को संसार में उलझाकर क्या पाते हैं। हम जिनके प्रलोभन में पड़कर अपने मन को संसार में उलझाते हैं, वे सब एक दिन छूट जाते हैं, किन्तु हमारा मन उलझकर जीवनभर अशांत रहता है और जन्मांतर में भी दुखों का कारण बनता है। इसलिए सदगुरु कहते हैं कि "यह पद का करो निबेरा"। अपने चेतनस्वरूप को सबसे अलग समझकर मन को सारे विषयों तथा सांसारिक चीजों से हटा लो। देह, गेह, परिवार, प्राणी, पदार्थ, पद, प्रतिष्ठा सब नाशवान एवं छूटने वाले हैं। इनकी अहंता-ममता छोड़ो। ये सब तुम्हारे नहीं हैं। तुम्हारा केवल तुम्हारी आत्मा है। आत्माराम बनो।

1. निबेड़ा—बृहत् हिन्दी कोश।

आप क्या चाहते हैं?

लेखक—नारायण दास

हर आदमी की मांग है सुख। सब यही कहते हैं कि हमें सुख चाहिए, परन्तु सुख के लिए काम नहीं करते हैं। जबान से कह देने मात्र से सुख नहीं मिलेगा। भूख लगने पर भोजन करना पड़ता है, प्यास लगने पर पानी पीना पड़ता है। भोजन और पानी कहने से भूख और प्यास नहीं मिटती है। उसी प्रकार सुख चाहने मात्र से नहीं मिलेगा। उसके लिए उपाय करना पड़ेगा। आदमी मरना नहीं चाहता है इसलिए जहर नहीं खाता है, फांसी नहीं लगाता है; पानी में नहीं डूबता है। जिसे मरना होता है वह अपना उपाय खोज लेता है। उसी प्रकार जिन्हें सुख पाने की प्रबल इच्छा हो जाती है वह अपना उपाय खोज लेता है। भगवान बुद्ध को संसार दुख रूप जान पड़ा। इसलिए वे राजसिक भोग सुख को त्याग कर परम सुख की खोज में निकल पड़े। पर हम हाथ पर हाथ धरे रहकर कहते हैं कि हमें सुख चाहिए। कैसे मिलेगा? कहा गया है—

उद्यमेन ही सिद्धयन्ति कार्याणि न च मनोरथैः।

नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशति मुखे मृगा ॥

उद्यम-पुरुषार्थ से कोई भी कार्य सिद्ध होता है, न कि सोचने मात्र से। सोये हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करता है। सिंह को यदि पेट भरना है तो उसे मृगा का शिकार करना पड़ेगा। सोये रहने से भूखों मर जायेगा।

वास्तविकता तो यह है कि आदमी सुख नहीं चाहता है, सुख के नाम पर सुविधा चाहता है। आप किसी भी व्यक्ति को मंदिर में जाते देखते हैं तो यही सोचते हैं कि यह आदमी सुख-शांति की इच्छा से मंदिर में भगवान के पास पूजा करने जा रहा है। आप धोखे में हैं। यह मत विश्वास कीजिये कि यह आदमी सुख तथा शांति की इच्छा लेकर भगवान के पास जा रहा है। उसे इसकी जरूरत नहीं है। उसे तो धन चाहिए, पद चाहिए, नौकरी चाहिए, पत्नी चाहिए, पति चाहिए, पुत्र चाहिए। मंदिर-मस्जिद भिखारियों के अड्डे हैं। जितने बड़े भिखारी होते हैं, वे सब मंदिर, मस्जिद में मिलेंगे और जितने छोटे भिखारी होते हैं वे सब सड़क किनारे तथा

रेल में मिलेंगे। सड़क में चलने वाले भिखारी दो-चार-पांच रुपये में खुश हो जाते हैं क्योंकि उन्हें केवल पेट की चिंता है। परन्तु मंदिर के भिखारी को कितना चाहिए और क्या चाहिए कह पाना मुश्किल है।

कहा जाता है कि एक बार नारद जी भगवान विष्णु से मिलने स्वर्गलोक पहुंचे। देखते हैं कि स्वर्गलोक बिलकुल खाली पड़ा है। सारे महल खाली, उनमें रहने वाला कोई नहीं। सारे बाग सूनसान, वहां घूमकर आनन्द लेने वाला कोई नहीं। सारे झील खाली उनमें नहाने वाला कोई नहीं। सारी सड़कें खाली उन पर चलने वाला कोई नहीं। भगवान विष्णु के पास नारद जी पहुंचकर कहते हैं कि आपका स्वर्ग बिलकुल खाली है। आप मृत्युलोक से लोगों को यहां क्यों नहीं लाते हैं? भगवान विष्णु ने कहा—क्या बताऊं नारद, यहां कोई आना ही नहीं चाहता है। कैसे लाया जाये? नारद ने कहा—ऐसा कैसे हो सकता है? स्वर्ग में आने के लिए लोग रात-दिन भजन-कीर्तन करते हैं। आपके नाम का जाप करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, यज्ञ-होम करते हैं। व्रत-उपवास, एकादशी आदि करते हैं। फिर भी आप कहते हैं कि कोई आना नहीं चाहता है। आपकी बात समझ में नहीं आती है। भगवान विष्णु ने कहा—परीक्षा करके देख लो। तुम कल मृत्युलोक में जाकर सबको बता देना कि सोमवार के दिन भगवान आप सबको दर्शन देंगे और आप लोगों को वरदान देंगे, आप सब जो चाहें मांग सकते हैं लेकिन एक ही वर देंगे, दूसरा नहीं। इसलिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण वर हो उसे सोच लीजिये। भगवान के पूछने पर आप वही वर मांगें। नारद जब मृत्युलोक में लोगों को यह बात बताये तो लोग बहुत खुश हुए।

दूसरे दिन भगवान विष्णु नारद जी को साथ लेकर मृत्युलोक पहुंचे। भगवान विष्णु ने कहा—आप सबकी भक्ति से हम बहुत प्रसन्न हैं। इसलिए हम आपको वर देना चाहते हैं। एक आदमी को एक वर, दूसरा नहीं। इसलिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण वर हो उसे मांग ले। उसे अभी ही पूरा कर देंगे। आप जानते हैं लोगों ने क्या

मांगा? किसी ने जमीन मांगी, किसी ने धन मांगा, किसी ने मकान मांगा, किसी ने नौकरी मांगी, किसी ने पुत्र, किसी ने नाती, किसी ने पोता, किसी ने पति, किसी ने पत्नी आदि। परन्तु किसी ने यह नहीं कहा भगवान यहां बहुत दुःख है, हमें आप स्वर्ग ले चलिये। भगवान ने कहा—‘तथास्तु’। तब भगवान विष्णु ने नारद जी को कहा—अब विश्वास हुआ? स्वर्ग किसी को नहीं चाहिए। सब सांसारिक भोग में ही मस्त हैं।

कभी मैं सोचता हूँ कि आदमी कहता है कि हमें सुख चाहिए। सचमुच में सुख चाहता है, विश्वास नहीं होता है। आदमी सुख के नाम पर आनन्द चाहता है। इंद्रियों का आनन्द। लोग कहते हैं कि हमें सुख चाहिए उनके सुख के मूल में आनन्द ही छिपा रहता है। आंखों से रूप का आनन्द चाहता है। हर क्षण नाक से सुगंध का, कान से शब्द का, जिह्वा से स्वाद का एवं त्वचा से कोमल-कोमल स्पर्श का आनन्द लेते रहना चाहता है। वही आनन्द सारा झंझट पैदा करता है। जीव के लिए काल बन जाता है। बाह्य विषयों प्राणी-पदार्थों से आनन्द लेने वाला आदमी सदैव क्लेश तथा चिंता में जीवन बिताता है। आनन्द चाहने वाला आदमी कहे कि हमें सुख नहीं मिलता है तो कैसे मिलेगा? दिशा सही हो तब तो सुख मिलेगा। यदि दिशा सही नहीं है तो दशा कैसे सही होगी? जब तक दिशा सही नहीं होगी तब तक मंजिल नहीं मिलेगी। एक आदमी रास्ते-रास्ते जा रहा था। आगे चौराहे पर जब पहुंचा तो एक आदमी से पूछा कि यह सड़क कहां जाती है? सामने वाले ने कहा—आपको जाना कहां है? उस आदमी ने कहा—यह तो मुझे नहीं पता कि मुझे कहां जाना है। सामने वाले ने कहा—तब फिर कोई भी सड़क पकड़ लो।

जिसे यही पता नहीं कि उसे कहां जाना है तो उसे रास्ता के बारे में जानने से क्या फायदा? इसी प्रकार जिसे यही पता नहीं है कि “सुख कैसे मिलेगा, उसे सुख चाहिए ऐसा गीत गाने मात्र से क्या फायदा।”

आदमी सदैव मृगतृष्णा में भटक रहा है। रेगिस्तान की रेत पर मृगा को दूर पानी होने का भ्रम होता है। परन्तु वहां जब जाता है तो सिर्फ बालू नजर आता है। वहां से फिर दूर बालू चमकती नजर आती है तो मृगा सोचता है कि वहां जरूर पानी होगा। दौड़कर जब वहां

जाता है, वहां भी बालू ही बालू। यही दशा आदमी की है। दूसरे की सुख-सुविधा को देखता है तो सोचता है कि यह आदमी बहुत सुखी होगा। किसी के पास सुन्दर मकान, सुन्दर गाड़ी, भरा-पूरा परिवार, भौतिक सुविधा देखकर आदमी सोचता है कि यह आदमी बहुत सुखी होगा। ऐसे मेरे पास भी होता तो मैं बहुत सुखी हो जाता। क्या आपके पास सुन्दर मकान नहीं है, सुन्दर गाड़ी नहीं है, भौतिक सुविधा की चीजें नहीं हैं, इसलिए आप दुखी हैं? भौतिक सुविधाएं आपके पास नहीं हैं या कम हैं इससे आपको निर्वाह में थोड़ी कठिनाई हो सकती है, परन्तु सुख से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। बड़े-बड़े महापुरुषों के पास व्यक्तिगत कोई सम्पत्ति नहीं थी। फिर भी सदैव वे सुखी थे। हमारे सद्गुरु अभिलाष साहेब अपने पास कभी एक रुपया भी नहीं रखते थे। फिर भी कभी यह नहीं कहे कि मैं दुखी हूँ या मेरे पास यह नहीं है। वे सदैव सुखी रहते थे। जब भी देखो मुस्कराते रहते थे। कभी किसी परिस्थिति में दुखी नहीं होते थे। यदि बाह्य भौतिक सुविधा को ही सुख मान लेंगे तो आपका दुख कभी नहीं जायेगा। सदैव आप दुखी ही रहेंगे। सुविधा भौतिक तथा शारीरिक स्तर की बात है और सुख मानसिक स्तर की बात है। सुखी होने के मुख्य दो सूत्र हैं। पहला है—‘त्याग’ और दूसरा है ‘संतोष’।

वेद के ऋषि कहते हैं—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद धनम् ॥

संसार की सम्पूर्ण सत्ता में ईश्वर बसाने योग्य है। सरल ढंग से कहें तो संसार के सभी प्राणी-पदार्थ ईश्वर का ही हैं, हमारा नहीं है। फिर भी हमें जीवन निर्वाह (भोजन, वस्त्र तथा निवास) के लिए उसका उपयोग करना है तो कैसे करना है, त्यागपूर्वक अनासक्त होकर। लोभ न करें। हमारे जीवन में हर जगह त्याग की आवश्यकता है। जो आदमी त्याग नहीं करेगा वह हर क्षण दुखी रहेगा। परिवार हो या समाज यदि आपस में त्याग भाव से नहीं रहेगा तो सदैव आपस में लड़ाई-झगड़ा होता रहेगा। परिवार या समाज का हर सदस्य यह सोचे कि जो भी चीज हो सबसे अधिक मुझे ही मिले बाकी लोगों को कम मिले तो कभी आपस में प्रेम

नहीं हो पायेगा। यदि परिवार या समाज का हर सदस्य यह सोचे कि मुझे कम मिले और अन्य सदस्यों को अधिक मिले तो कभी भी लड़ाई-झगड़ा नहीं होगा? परिवार स्वर्ग बन जायेगा। प्रसन्नता, सुख तथा शांति के धनी हो जायेंगे। जहां पर लोभ होता है वहां सदैव कलह होता है। विनाश सिर पर मंडराता रहता है। कौरव-पाण्डव के बीच लोभ पैदा हो गया परिणाम क्या निकला, सबको पता है। यदि हम भी वैसा ही करेंगे तो हमें भी वही परिणाम मिलेगा।

ऋषि कहते हैं कि सुख से जीने का सबसे अच्छा तरीका है कि त्यागपूर्वक निर्वाह लो। लोभ न करो। अन्त में कहते हैं कि धन किसका है या किसके साथ जाता है। जिसके लिए आदमी आपस में लड़ाई-झगड़ा करता है वह किसके साथ जाता है। कबीर साहेब ने कहा है “कबहुं न भयउ संग औ साथ। ऐसे ही जन्म गमायउ आछा॥” जो कभी जीव के संग नहीं जाते हैं उन्हीं प्राणी-पदार्थों के लिए आपस में वैर-विरोध करके कल्याण भूमिका मनुष्य जीवन व्यर्थ गंवा दिया। थोड़ा भी विचार करता तो बात समझ में आ जाती। परन्तु आदमी सांसारिकता में अपने आप को ऐसा खो देता है कि इधर ध्यान ही नहीं दे पाता है। जब ध्यान जाता है तब अवसर समाप्त हो गया होता है। औरंगजेब ने मरती बेला में अपने बेटे के पास पत्र भेजा कि जिंदगी बेश-कीमती थी परन्तु बेकार चली गयी। न अपना कल्याण कर पाया न औरों का। न सुख से जिया और न लोगों को जीने दिया। वह जीवन को समझा भी तो मरती बेला में। जवानी में जोश रहता है तो होश नहीं रहता है। बुढ़ापा में होश रहता है तो जोश नहीं रहता है कि कुछ कर सके।

*धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, भार्या गृहद्वार जना श्मशाने।
देहश्चितायां परलोक मार्गे, कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥*

धन धरती पर ही पड़ा रह जाता है। पशु पशुशाला में बंधे रह जाते हैं, पत्नी घर के दरवाजे तक रह जाती है, लोग श्मशान तक जाते हैं और शरीर चिता तक साथ देता है। जीव के साथ केवल उनके अच्छे-बुरे कर्म ही जाते हैं। दो पंक्ति में ही जीवन की सारी वास्तविकता बता देते हैं। यह बात सबको मालूम है कि कोई जब मर

जाता है तो लोग कहते हैं कि भैया, दुनिया में कुछ नहीं है। परन्तु उसी दुनिया में भूले रहते हैं। वस्तुतः सुख से जीने का पहला तरीका है कि अपने अन्दर त्याग भाव हो, जितना त्याग से रहेंगे उतना सुखी रहेंगे।

सुख से जीने का दूसरा तरीका है ‘संतोष’। संतोष सबसे बड़ा धन है। परन्तु आदमी के पास इसी की कमी है। इसीलिए सदैव दुखी रहता है। आदमी को सदैव कमी का महसूस होता रहता है कि इतना होना चाहिए था परन्तु इतना ही हुआ। जिसे कम रहता है उसे कुछ देकर पूरा किया जा सकता है। परन्तु जिसे कम महसूस होता है उसे संसार की कोई भी शक्ति पूरा नहीं कर सकती है। सोच ही तो है चाहे आदमी आधा गिलास भरा कहे या आधा गिलास खाली कहे। जिसकी दृष्टि आधा गिलास भरा पर रहेगी वह सुखी रहेगा और जिसकी दृष्टि आधा गिलास खाली पर रहेगी वह दुखी रहेगा। उसे सुखी होने का कोई उपाय नहीं है।

आदमी दूसरे को देख-देखकर असंतोष पैदा करता रहता है। दूसरे का सुन्दर मकान देखा तो अपना मकान फीका पड़ जाता है। दूसरे की गाड़ी देख तो अपनी गाड़ी फीकी लगती है। दूसरे की सुख-सुविधा को देखता है तो उन्हें अपनी सुख-सुविधा फीकी जान पड़ती है। कितने तो अपने मित्र की पत्नी को देखता है तो उन्हें अपनी पत्नी फीकी लगने लगती है। ऐसा आदमी क्या कभी सुखी हो सकता है? सपने में भी नहीं। संतोषी आदमी सदैव महाधनी एवं महासुखी होता है। वस्तुतः यदि सुख से जीना है तो सहज मेहनत से जो मिल जाये उसी में संतोष रखो। मेहनत करते रहो। अपनी आमदनी के हिसाब से खर्च करो। फिजूलखर्ची न बनो तो सदैव सुखी रहोगे। खास बात है आदमी सुख चाहता है। सुख कैसे मिले उसके लिए काम नहीं करता है। सुख से जीने का दो तरीका है—एक त्याग—अपने अन्दर सदैव त्याग की भावना हो। किसी चीज के लिए छीना-झपटी न हो। सदैव मन में यह सोचे कि हमें नहीं चाहिए और दूसरी बात सदैव मन में रखे कि हमें जो मिल जाये वही बहुत है। ऐसा संतोष रखे तो सदैव सुखी रहेंगे। जीवन जीने में आनन्द आयेगा।

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

निकट या दूर के लोग तुम्हें किस दृष्टि से देखते हैं, कौन तुम्हारा साथ देता है और कौन साथ छोड़ देता है, कितना बड़ा समाज है, कितना प्रचार है, इन बातों से तुम्हारा कौन-सा लाभ या हानि है? तुम्हारी हानि है देहात्म-बुद्धि तथा अशांति और लाभ है चेतनात्म बुद्धि और शांति। अतएव इस संसार से एकदम निश्चित रहो। हमारे चारों तरफ क्या होता है, इसकी कोई चिंता नहीं। स्वयं को अंतर्मुख रखो और दूसरों की यथाशक्ति सेवा करो, इतना ही कर्तव्य है। याद रखो, देह और देह-संबंध का सब कुछ आज-कल में शून्य हो जाने वाला है। तुम दृश्यों के आन्दोलन में कभी न पड़ो। यह सब क्षणिक है।

स्मरण से जड़-दृश्य जगत-प्रपंच का संबंध है और स्मरण देहोपाधि से है। देहापाधि क्षणिक है। आज कल में देह नहीं रहेगी फिर जगत का स्मरण नहीं रहेगा, तो हानि-लाभ भी नहीं रहेंगे। तुम देह-संबंध में जगत का स्मरण कर उसमें अहंता-ममता बनाते हो और मानसिक ताप में तपते हो। अहो, जिस संसार में तुम्हारा कुछ नहीं है, उसमें अज्ञानवश कुछ अपना मानकर ताप की भट्टी में जलते हो। अतएव अपनी असंगता की याद करो, उसी का अभ्यास करो और उसी भाव में जीवन व्यतीत करो। कम खाकर पेट को हलका रखो, और कम व्यवहार रखकर मन को हलका रखो। तुम्हारा मन दृश्य का स्मरण न कर, आत्मस्मरण तथा आत्मलीनता में रहे।

बड़ा परिवार या समाज, भवन या आश्रम, धन संपन्नता, ऐश्वर्य, प्रसिद्धि, उच्च पद आदि से कोई सुखी नहीं हो सकता। क्योंकि रोग, वृद्धता, वियोग, प्रतिकूलता, मन की तृष्णा, अहंकार, कामनाएं, साथी मनुष्यों के विलक्षण स्वभाव, राग-द्वेष मनुष्य को जलाते

रहते हैं। बिना विवेक, समता, संतोष और धैर्य के कोई सुखी नहीं हो सकता। बाहर से सुख पाने की लालसा केवल मन का भ्रम है। सहनशील होकर विवेकपूर्वक संतोष धारण करने से ही मनुष्य सुखी हो सकता है। जीवन का परम आनंद संसार को भूल जाने में है। नींद में भूल जाते हैं, मौत में भूल जायेंगे। जाग्रत में भूलना समाधि है और सच्चा सुख है।

हमें सतत जागरूक रहना चाहिए कि बीती हुई घटनाओं की याद में अपने मन को न लगावें और भविष्य के विषय में कल्पना न करें, अपितु वर्तमान में स्वरूपभाव, आत्मभाव में मन लगावें। बीती घटनाएं मरी हुई हैं और भविष्य स्वप्न है। वर्तमान ही सही है, और वर्तमान पर ध्यान देते ही वह भूत हो जाता है, किन्तु यदि साधक वर्तमान में आत्मभाव में जीता है, तो वह धन्य है। देहभाव नरक है, आत्मभाव स्वर्ग है, देहभाव बंधन है, आत्मभाव मोक्ष है। जीवन का रत्न समय है, उसे मरी बातों की याद में न बिताये, प्रतिक्रिया में बरबाद न करे, अपितु अपने शांत स्वरूप चेतन के विचार में जीये।

सबकी समझ अलग-अलग है, स्वभाव, रुचि, गुण, कर्म, सोचने के तरीके अलग-अलग हैं। इसलिए शांति और समता भाव रखकर सबसे व्यवहार करने से परिणाम अच्छा हो सकता है। अगले आदमी से थोड़ी त्रुटि होने पर यदि उत्तेजना के अधीन होओगे तो व्यवहार तो खराब होगा ही, अपना तथा दूसरे का मन भी खराब होगा। इसलिए कितनी ही प्रतिकूलता आने पर उत्तेजना के अधीन न होवे, कटु शब्द न कहे, व्यवहार रूखा न बनावे, अपितु धीरज धरकर शांति का परिचय दे। गलती होती है। समय से तुमसे भी गलती होती है। इसलिए समता तथा क्षमा भाव रखकर शांतिपूर्वक व्यवहार करो।

अबोध, अज्ञान, भ्रम, मानसिक दुर्बलताएं जिनका मूल मोह है, इन सबके नष्ट हो जाने पर हृदय शोक से

पार हो जाता है। जो शोक-मुक्त हो गया, वह संसार-सागर से पार हो गया। मन के विकारों से हृदय शोक-सागर बना रहता है। जिनका मनोविकार नष्ट हो गया, वे शोक से पार हो जाते हैं। अंततः अपना माना हुआ किसी का कुछ नहीं रहता है और इन्हीं छूट जाने वाले प्राणी, पदार्थ तथा परिस्थितियों की सत्यता के भ्रम में पड़कर मनुष्य राग-द्वेष और कलह करता है। जिनके मन की अविद्या दृढ़ साधना से नष्ट हो जाती है वे मनोविकारों से छूटकर शोक से परे हो जाते हैं। यही जीवन का सर्वोत्तम फल है।

* * *

तुम्हारे पास कुछ नहीं है। तुम्हारे पास न तन है, न मन है, न धन है, न जन है, न जग है, न प्रकृति है और न विकृति है। तुम शुद्ध चेतन, असंग, अलिंग, अमल, अविनाशी, निराधार तथा केवल हो। यह भाव सब समय मन में बनाये रखो। आजकल में देह छूटने वाली है, फिर तो अनंत काल निराधार दशा ही है। जो दुखरहित परमशांति का साम्राज्य है। विकार में दुख है, निर्विकार में दुख का लेश भी नहीं है। देहातीत-दशा में सब समय जीवन व्यतीत करो। देह रहते-रहते देह के भाव से ऊपर आत्मभाव में जीना ही उच्चतम साधना है। सत्य का तथ्य और नियम सबके लिए बराबर है। जड़-द्रव्य को चित्त से उतारे रखो और अंततः चित्त को भी शांत कर चेतन में ठहरो।

* * *

समय-चक्र निरंतर चल रहा है। प्रतिक्रिया में निरंतर लगे रहना मन की पुरानी आदत है। साधक को चाहिए कि इसको आत्म-चिंतन में बदल दे। प्रतिक्रिया बीती घटनाओं-बातों की होती है जो बिलकुल मरी हुई होती हैं। आदमी भ्रम में जीता है। प्रतिक्रिया भ्रम से ही उत्पन्न होती है। जीवन का सुनहला समय आत्म-चिंतन में बिताना चाहिए।

* * *

मन से कल्पनाएं होती हैं, तर्क-वितर्क और प्रतिक्रियाएं होती हैं। यदि मन शांत रहे तो कुछ नहीं होता है। परंतु मन में अहंकार और कामनाएं हैं तो वह

शांत नहीं रहेगा। साधक समझता है कि हमने सारे अहंकार और कामनाएं त्याग दीं हैं, परंतु यह सूक्ष्म विषय है। यदि सारी कामनाएं त्याग दी गयी हैं और अहंकार का पूर्ण विसर्जन हो गया है तो मन क्यों चलायमान है जिससे उसमें नाना वितर्क चल रहे हैं। जब अहंकार तथा कामनाओं का पूर्ण विसर्जन हो जायेगा, तब मन शांत हो जायेगा और उसके वितर्क समाप्त हो जायेंगे। यही जीवन्मुक्ति है। विकल्प-रहित चित्त शांति-सागर है।

* * *

तृण रहित अग्नि की तरह शांत होकर जीवन बिताइये। सब क्षणिक, क्षणिक, क्षणिक। तुम इन क्षणिकाओं के द्रष्टा हो, स्थिर हो। क्षणिक दृश्य में मत भूलो। उदासीन होकर जीवन यापन करो। कहीं कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिससे तुम्हारा स्थिर संबंध हो सके। तुम्हें बाहर कहीं जुड़ने का प्रयोजन नहीं है। तुम स्वयं तृप्त स्वरूप हो। तुम अपने में पूर्ण, अखंड, अप्रमेय, शाश्वत, शांत एवं अविचल हो। तुम्हारे लिए केवल तुम काफी हो। इस क्षणिक मल-पिंड काया का निर्वाह होता रहेगा और आज-कल में यह सदा के लिए लुप्त हो जायेगा। इस तथ्य का स्मरण सदैव रखकर देह-भाव से रहित होकर आत्मभाव में जीयो।

* * *

मोक्ष में बाधक दूसरा नहीं होता है अपितु अपना अहंकार और कामनाएं होती हैं। इनको त्याग देने वाले के लिए मोक्ष का द्वार खुला है। मनुष्य जीवन पर्यंत हाय-हाय कर दौड़ता रहता है, परंतु शरीर छोड़ देने के बाद उस हाय-हाय का क्या मूल्य रह जाता है? वह बहुत काम करता है, यदि मोक्ष का काम नहीं करता है, तो अपने को धोखा ही देता है। मोक्ष है वर्तमान में पूर्ण शांति-दशा में जीना। समझदार लोग भी जिनके जीवन के बाहरी सब काम हो गये हैं, मोह-वश साधना में नहीं लगते हैं और जीवन का शेष समय आलस्य, प्रमाद और क्षणिक सांसारिक खिलौने में बिताते हैं। वे धन्य हैं जिनको आत्मकल्याण के लिए विरह है और तन-मन से लगे हैं।

कर्मयोगी कबीर

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

(अप्रैल अंक से आगे)

वर्ष 1408 ई० जब दस साल का कबीर खुली आंखों से इस संसार को देख रहा था, धार्मिक असहिष्णुता काशी में ही नहीं पूरे भारत में अपनी चरम स्थिति पर थी। मुक्तिधाम कही जाने वाली भगवान शिव की नगरी काशी की तो बात ही निराली थी। जातिगत श्रेष्ठता के अहंकार में डूबे पंडे-पुजारी एवं पंडित नाना कर्मकांडों तथा धार्मिक पाखंड में पूरी तरह लिप्त थे। ये लोग समाज को सत्य का मार्ग दिखाने के बजाय अपना उल्लू सीधा करने में लगे थे। वैसे भी जातिगत ऊंच-नीच की भावना से हिन्दू समाज पूरी तरह पतन के गर्त में डूब चुका था। जिस वर्णव्यवस्था की स्थापना कभी समाज की व्यवस्था बनाये रखने के लिए की गई थी, वह इस वक्त रूढ़ होकर समाज का कोढ़ बन गई थी।

तथाकथित उच्च जाति के लोग नीच जाति के किसी भी व्यक्ति के छू जाने मात्र से अपवित्र हो जाते थे, और उन्हें पवित्र होने के लिए गंगा-स्नान करना पड़ता था। निम्न वर्ग के लोगों को पढ़ने-लिखने का अधिकार नहीं था। उनका कर्तव्य केवल उच्च वर्ग के सवर्ण लोगों की सेवा करके अपनी आजीविका चलाना था। यही वजह है कि कबीर-जैसे प्रतिभासंपन्न बालक को कोई भी शिक्षा देने को तैयार नहीं हुआ। जुलाहों को नीच अथवा कमीनी जाति का दर्जा प्राप्त होने के कारण हिन्दू पंडितों की तरह मौलवियों ने भी कबीर को तालीम देने से इंकार कर दिया।

लेकिन कबीर साधारण मिट्टी का नहीं बना था। वह समाज में व्याप्त इस विसंगति को देखकर अत्यंत उद्वेलित और विचलित था। कोई आदमी जाति से कैसे छोटा-बड़ा हो जाता है? जबकि सारे इंसान तो एक से ही होते हैं। सारे मानव एक जैसे जन्मते हैं और अंत में मर जाते हैं। यहां कोई गरीब, कोई अमीर क्यों है? हिन्दू ईश्वर की पूजा करते हैं तो मुसलमान खुदा की इबादत

करते हैं। क्या इस संसार में दो परमात्मा हैं? और क्या वह परमात्मा या खुदा पूजा-भक्ति अथवा इबादत से प्रसन्न होता है? यदि हां, तो फिर चारों ओर अनाचार, अत्याचार, लूट-खसोट एवं अन्याय का साम्राज्य क्यों है? क्यों लोग धर्म के नाम पर कल्लेआम करते हैं? और वह सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ ईश्वर आकाश में बैठा चुपचाप देख रहा है? क्यों किसी गरीब की वह रक्षा नहीं करता? क्यों समाज में जातिगत ऊंच-नीच की खाई बनी हुई है? और क्यों हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं? ये सारे प्रश्न कबीर के हृदय को झिंझोड़ डालते थे। इसीलिए इस संसार की वास्तविकता जानने को व्याकुल वह यहां से वहां मारा-मारा फिरता था। जहां कहीं ज्ञान की चर्चा होती कबीर दौड़ा चला जाता। पंडितों को कथा बांचते तथा उपदेश करते देख कबीर अपने को रोक नहीं पाता था। वह चुपचाप श्रोताओं के बीच बैठकर बड़े मनोयोग से कथा सुनता और तरह-तरह के सवाल करके उन्हें उलझन में डाल देता था। कुछ चिढ़ जाते तो कुछ हैरत भरी नज़रों से उसे ताकते रह जाते। आखिर इस छोटे-से बालक में इतनी बुद्धि कहां से आ गई? अभी तो इसकी उम्र बांटी-भौरा और गुल्ली-डंडा खेलने की है। मगर नीर-क्षीर विवेक की अद्भुत मेधा से संपन्न कबीर के तर्क के सामने धर्म के ठेकेदार अत्यंत लाचार होकर रह जाते थे।

एक दिन काशी के चौराहे पर एक पंडित कथा बांच रहे थे। पंडित जी माथे पर तिलक लगाये ऊंचे आसन पर विराजमान, श्रोताओं को भगवान नरसिंह अवतार की कथा सुना रहे थे। उन्होंने कहा, “भगवान अंतर्यामी हैं। वे संकट की घड़ी में अपने भक्तों की रक्षा करने दौड़े चले आते हैं। जब हिरण्यकश्यप भक्त प्रहलाद की हत्या करने पर उतारू हो गया तो भगवान खंभा फाड़कर

नरसिंह रूप में प्रकट हुए और हिरण्यकश्यप को मारकर भक्त प्रहलाद के प्राणों की रक्षा किये। उस परम पिता परमेश्वर की महिमा अपरंपार है।”

कथा समाप्ति के करीब थी कि कबीर हाथ जोड़े खड़ा होकर बोला, “पंडित जी महाराज, आज्ञा हो तो कुछ पूछना चाहता हूँ।”

बालक कबीर की जिज्ञासा देख पंडित जी गद्गद हो गये। बोले, “पूछो बेटा, पूछो, क्या जानना चाहते हो?”

“हिरण्यकश्यप जब प्रहलाद को तलवार से मारने पर उतारू हो गया तो उसकी रक्षा के लिए भगवान खंभा फाड़कर प्रकट हो गये। लेकिन आज इस्लाम धर्म कबूल न करने वाले हिन्दू मौत के घाट उतारे जा रहे हैं, तब उनकी रक्षा के लिए कोई भगवान खंभा फाड़कर क्यों नहीं प्रकट होता?”

सवाल सुनकर पंडित जी परेशान हो उठे। यह छोटा-सा बालक ऐसा लाजवाब प्रश्न करेगा उन्हें उम्मीद नहीं थी। कुछ देर तक वे कबीर को अपलक ताकते रह गये। उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या जवाब दें? सारे श्रोता हैरान कभी पंडित जी की ओर देखते तो कभी कबीर की ओर। कई क्षण तक वहां एक अजीब-सा सन्नाटा छाया रहा। आखिर में पंडित जी संभलते हुए बोले, “बेटा, तुम्हारा नाम क्या है?”

“मैं नीरू जुलाहे का बेटा कबीर हूँ।” कबीर ने ऐसा जवाब दिया कि पंडित जी को आगे कुछ और पूछने की जरूरत नहीं पड़ी। वे मन ही मन बुदबुदाने लगे, “आश्चर्य है, जुलाहे का यह छोटा-सा लड़का इतना बुद्धिमान कैसे हो गया?” उन्होंने जवाब को टाल जाने में ही अपनी भलाई समझी, बोले, “कबीर, अभी तुम बच्चे हो। जब बड़े हो जाओगे तब खुद ब खुद तुम भगवान और उसकी शक्ति के रहस्य को समझ जाओगे। बेटा, अभी तो तुम्हारी अवस्था खेलने-खाने की है।”

पंडित जी का जवाब सुन वहां उपस्थित सारे लोग मुस्कराकर रह गये। लेकिन कबीर गंभीर मुखमुद्रा लिए खड़ा रहा। लोग समझ गये कि पंडित जी कबीर के

सवाल का जवाब नहीं दे पाये इसलिए उसे छोटा बच्चा कहकर टाल गये। मगर कबीर की विलक्षण बुद्धि देख सारे लोग हैरान थे। इतनी छोटी उम्र और ये तेवर ! पता नहीं आगे चलकर यह बालक क्या गुल खिलायेगा?

यही कोई हफ्ता भर पहले ही की बात है। क्वारं नवरात्र के अवसर पर काशी के प्रसिद्ध काली मंदिर में पूजा-पाठ चल रहा था। लोग दिन-रात भक्ति-भाव से माता की आराधना में तल्लीन थे। प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी पशुओं की बलि दी जा रही थी। कबीर अपने साथियों के संग माता के मंदिर में पहुंच गया। जब बलि देने की बारी आयी तब वह चिल्ला पड़ा, “पुजारी जी, निर्जीव देवी-देवताओं के नाम पर इन निरीह मूक पशुओं की हत्या मत करो। इन निरपराध प्राणियों की हत्या के पाप से तुम बच नहीं सकोगे। यह अशक्त प्राणहीन मिट्टी-पत्थर की देवी लोगों का कोई भला नहीं कर सकती।”

“अरे नादान बालक, तुझे देवी की शक्ति का अंदाजा नहीं है इसीलिए ऐसा प्रलाप करता है।” पुजारी जी बिदक गये थे।

“माटी के करि देवी-देवा, काटि-काटि जीव देइया जी। जो तोहरा है साँचा देवा, खेत चरत क्यों न लेइया जी।”

कबीर ने तत्काल एक कवित्त जड़ दिया था। लोग उसकी निर्भीकता और पशु-बलि का विरोध देख चकित रह गये। पुजारी जी अब आग बबूला हो गये थे, “कौन है रे तू, जो हमारे ही सामने हमारी आराध्य देवी मां काली का अपमान कर रहा है?”

“पुजारी जी, मेरा नाम कबीर है। मैं नीरू जुलाहे का बेटा हूँ। और कुछ पूछना है?” कबीर दृढ़ स्वर में बोला था।

इतना सुनते ही पुजारी आपे से बाहर हो गये थे, “अरे जुलाहा, तेरी हिम्मत कैसे हुई इस मंदिर में घुसने की?”

“पुजारी जी, जब इन जानवरों की हत्या करते हो तब तुम्हारा मंदिर अपवित्र नहीं होता। किंतु जब कोई

इंसान प्रवेश करता है तब अपवित्र हो जाता है। धर्म के नाम पर ढोंग मत करो पुजारी जी।”

कबीर की निर्भोकता और अक्खड़पन देख पुजारी के अलावा वहां उपस्थित तमाम श्रद्धालु भक्त आश्चर्य से उसे ताकते रह गये। जिस सच्चाई को बड़े-बड़े विद्वान कहने की हिम्मत नहीं कर सकते उसे यह छोटा-सा बालक कैसे बेखौफ कह रहा है? कुछ भी हो, बात तो सच है। देखने-सुनने वाले लोग कबीर की इस अदा पर फिदा हो गये थे और पुजारी जी दांत पीसकर रह गये थे।

अब तो काशी में ऐसी घटनायें आम हो गई थीं। लोग गली-चौराहों में मजे लेकर कबीर के किस्से सुनाया करते। प्रसिद्ध विश्वनाथ मंदिर के आगे चौराहे पर बैठा एक नागरिक अपने मित्र को बता रहा था, “कल सबेरे की बात है। पुजारी जी महाराज, गंगा-स्नान करके शिव-शिव जपते सीढ़ियां चढ़ रहे थे। सामने से कबीर और उसके साथी गंगा-स्नान के लिए जा रहे थे। इसी बीच पता नहीं कैसे कबीर का शरीर पुजारी जी को छू गया, बस फिर क्या था? पंडित जी आपे से बाहर हो गये, “नालायक, कौन है तू और किस जाति का है? मुझे छूकर अपवित्र कर दिया। देखकर नहीं चल सकता।”

अब भला कबीर कहां चुप रहने वाला था, मुस्कराकर बोला, “मैं तो कबीर जुलाहा हूं। लेकिन आप कौन हैं?” जवाब सुनकर पंडित का क्रोध सातवें आसमान पर जा पहुंचा, “तुझे दिखाई नहीं देता यह जनेऊ? हम ब्राह्मण हैं।”

“अच्छा, जो जनेऊ पहनता है, वह ब्राह्मण होता है?

*पहिरि जनेऊ जो ब्राह्मण होना, मेहरी क्या पहिराया।
वो जन्म के शूद्रिन परसे, तुम पाँडे क्यों खाया॥”*

“नालायक, हम पैदायशी ब्राह्मण हैं। जनेऊ पहन लेने से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता।” पुजारी जी चिल्लाकर बोले थे। तब कबीर ने हंसते हुए कहा—

*“एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।
एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा॥*

संसार के सारे मानव की संरचना तो एक जैसी है पुजारी जी, और सभी एक ही मार्ग से पैदा होते हैं। फिर आप किस नाते से ब्राह्मण हैं? क्या आप किसी दूसरे रास्ते से पैदा हुए थे? या फिर पेट से जनेऊ पहने आये हो? क्या विशेषता है आपकी? जो एक इंसान के छू जाने से अपवित्र हो जाते हैं। मैं तो कहता हूं पुजारी जी, आपसे बड़ा नीच और कोई नहीं है।”

कुछ ही देर में वहां भीड़ इकट्ठी हो गई थी। बात बिगड़ते देख वहीं पास खड़ा एक पंडित बोला, “महाराज, बातों में आप इससे पार नहीं पा सकते। अच्छा है, यहां से चले जाइये।” और पुजारी जी पैर पटकते हुए पुनः गंगा-स्नान के लिए चले गये थे।

और एक दिन जब कबीर गंगा में डुबकी लगा रहा था तब उसने देखा कि एक पंडित जी अंजुली से उलीच-उलीच कर सूर्य को जल दे रहे हैं। वह तुरंत पंडित जी के करीब पहुंच गया और अपने खेत की ओर मुंह करके दोनों हाथों से पानी उलीचने लगा। पंडित जी कबीर का यह कृत्य देख चुप नहीं रह सके। उन्होंने पूछा, “यह क्या कर रहे हो?”

कबीर ने कहा, “मेरे खेत की मूली सूख रही है पंडित जी, वहीं पानी दे रहा हूं।”

“बालक, यहां पर पानी उलीचने से तुम्हारे खेत में पानी कैसे पहुंचेगा?”

“पंडित जी, जब अंजुली भर कर उलीचा हुआ पानी इतनी दूर सूर्य तक पहुंच सकता है तब हमारा खेत तो यहीं काशी में ही है। वहां तक कैसे नहीं पहुंचेगा?”

“यह आस्था और विश्वास की बात है बच्चा। तुम अभी नहीं समझोगे।” हड़बड़ाये पंडित जी ने गंगा से बाहर निकलकर अपनी धोती को निचोड़ा और पैर पटकते हुए चलते बने।

इस तरह बाल्य अवस्था से ही कबीर अत्यंत निर्भोक तथा धर्म के नाम पर जहां भी आडंबर देखता तत्काल उस पर प्रहार करने से नहीं चूकता था। यही वजह है कि उसकी विलक्षण बुद्धि देख काशी के लोग अत्यंत आश्चर्यचकित थे।

लाओत्ज़े क्या कहते हैं?

16. अहंता-ममता-शून्य आत्मविजयी सारे संकटों से पार होता है

1. *Create emptiness up to the highest!
Guard stillness up to the most complete.
Then all things may rise together.
I see how they return.
Things in all their multitude:
each one returns to its root.
Return to the root means stillness.
Stillness means return to fate.
Return to fate means eternity.
Cognition of eternity means clarity.*
2. *If one does not recognise the eternal
one falls into confusion and sin.
If one recognises the eternal
one becomes forbearing.
Forbearance leads to justice.
Justice leads to mastery.
Mastery leads to Heaven.
Heaven leads to DAO.
DAO leads to duration.
All one's life long one is not in danger.*

अनुवाद

1. पूर्णरूपेण खाली हो जाओ!
सब प्रकार से शांति को अक्षुण्ण रखो।
तब सारी वस्तुएं एक ही भांति विकसित होते हुए
दिखेंगी।
मैं देखता हूं उन्हें वापस लौटते हुए।
वस्तुएं अपने सभी रूपों में,

- प्रत्येक अपने उद्गम की ओर लौटती हैं।
उद्गम की ओर लौटना विश्रांति पाना है।
विश्रांति पाना अर्थात् अपनी नियति को उपलब्ध
होना है।
नियति को उपलब्ध होना ही शाश्वत होना है।
शाश्वत होने की पहचान ही यथार्थ समझ है।
2. यदि शाश्वत से अपरिचित रहे,
तो दिग्भ्रमित होंगे और पाप में गिरेंगे।
जो शाश्वत को जान लेता है,
वह सहिष्णु हो जाता है।
सहिष्णु होना निष्पक्षता का प्रारंभ है।
निष्पक्षता स्वामित्व का प्रारंभ है।
स्वामित्व स्वर्ग की ओर ले जाता है।
स्वर्ग ताओ की ओर ले जाता है।
ताओ स्थायित्व की ओर ले जाता है।
फिर आप जीवन भर संकटमुक्त रहेंगे।

भावार्थ—1. अहंता-ममता खो दो और हर तरह से शांति को स्थिर रखो। तब उत्पन्न होनेवाला सारा कार्य-पदार्थ एक ही प्रकार विकसित होते हुए दिखेगा। इसके साथ उनका वापस अपने कारण तत्त्वों में लौटना भी दिखेगा। संसार के सारे निर्मित पदार्थ अंत में अपने कारणतत्त्वों में लीन होते हैं। अपने मूल में लौट जाना विश्राम पाना है। यही प्रकृति के विधान में लौटना है। प्रकृति के विधान में लौटना ही शाश्वत होना है। मनुष्य को अपनी शाश्वत सत्ता की परख हो जाना सच्ची समझ है।

2. यदि मनुष्य अपने शाश्वत स्वरूप से अपरिचित रहा, तो वह कल्याण की दिशा से भटककर पाप में गिरेगा। जो अविनाशी तत्त्व को जान लेता है, वह सहनशील हो जाता है। सहनशील हो जाना निष्पक्षता की शुरुआत है। निष्पक्षता अपने स्वामित्व में प्रतिष्ठित होने की शुरुआत है। स्वामित्व स्वर्ग की ओर ले जाता है।

स्वर्ग ताओ की ओर ले जाता है। ताओ स्थिरता की ओर ले जाता है। फिर मनुष्य जीवनपर्यंत दुखों से मुक्त रहेगा।

भाष्य—पूर्णरूपेण खाली हो जाओ। सब प्रकार से शांति को अक्षुण्ण रखो। संत लाओत्जे का यह महावाक्य 'पूर्णरूपेण खाली हो जाओ।' अध्यात्मस्थिति की मार्मिकता का स्पर्श कराता है। मन से सारे संसार का संबंध होता है; इसलिए मन को ही खाली कर देने पर संसार निवृत्त हो जाता है। मन में राग-द्वेष का कबाड़ भरा है, उसे निकाल फेंको, और आगे उसमें राग-द्वेष न भरो। मन की सारी अहंता-ममता एवं मान्यताओं को निकालकर उसे खाली कर दो। समय-समय से संकल्प-शून्य हो जाओ, जो मन का एकदम खालीपन है। मन में कुछ न भरो तो वह खाली ही रहेगा।

ध्यान के समय मन का संकल्प-शून्य हो जाना उसका खाली होना है और व्यवहार के समय अहंता-ममता एवं विकारों का न होना मन का खाली होना है। दूसरा वाक्य है, **सब प्रकार से शांति को अक्षुण्ण रखो।** याद रखो, मन को खाली किये बिना सब प्रकार से शांति स्थिर नहीं रह सकती। संसार का व्यवहार ऐसा है कि यदि मन में अहंता-ममता भरे रहोगे, तो हर क्षण दुखते रहोगे।

हम केवल सकारात्मक पक्ष को देखते हैं, नकारात्मक को नहीं देख पाते। यह पक्का समझ लो कि संसार द्वंद्वत्मक है। यहां सकारात्मक पक्ष के साथ नकारात्मक पक्ष लगा रहता है। जहां प्रकाश का अंत है वहां अंधकार लगा है। जहां जल है वहां कीचड़ है। जो प्रेम करेगा वह बिना घृणा किये नहीं रह पायेगा। स्तुति करने वाला निंदा भी करेगा। सत्कार करनेवाला तिरस्कार भी करेगा। यह सब निकट-से-निकट के लोग ही करते हैं। ऐसा मनुष्य दुर्लभ है जो प्रेम के साथ घृणा, स्तुति के साथ निंदा और सत्कार के साथ तिरस्कार न करे। निंदा करने वालों को हम बुरा न मानें। बुरे हम हैं जो हम इस सत्यता के बोध से दूर हैं कि सकारात्मक

पक्ष के साथ नकारात्मक पक्ष होता है।

ऐसे सकारात्मक तथा नकारात्मक पक्षों से संबलित द्वंद्वत्मक संसार में रहकर हमारी शांति सब तरफ से तभी अक्षुण्ण रह सकती है जब हमारा मन खाली हो, शिशु की तरह हो। हम देह के अभिमानी हैं। उसके वर्ण, आश्रम, जाति, गुण, कर्म, वैभव, पद, अधिकारादि जो विकारी, तुच्छ, अनात्म, अनित्य और सदा के लिए शून्य हो जाने वाले हैं, उनमें चिपके हैं। ये सारी चिपकाहट सर्वथा छूटकर जब मन खाली हो जाता है, निरभ्र आकाश की तरह निर्मल हो जाता है, तब हमारी शांति सब तरफ से स्थिर रहती है। यही जीवन की सार्थकता है।

तब सारी वस्तुएं एक ही भांति विकसित होते हुए दिखेंगी। मैं देखता हूं उन्हें वापस लौटते हुए। वस्तुएं अपने सभी रूपों में प्रत्येक अपने उद्गम की ओर लौटती हैं।

ग्रंथकार कहते हैं कि जब मन खाली होता है, अहंता-ममता-शून्य होता है, और परिणाम में अगाध शांति होती है, तब ऐसा पारदर्शी मन वाला मनुष्य यह देखता है कि जिनमें हमारा मोह होता है वे सारी निर्मित वस्तुएं एक भांति उत्पन्न होती हैं, बढ़ती हैं, जरजर होती हैं और लौटकर अपनी मूल प्रकृति में लीन हो जाती हैं। नचिकेता के वचनों में "सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः।" अर्थात् मनुष्य फसल की तरह पैदा होकर पककर गिर जाता है और पुनः पैदा होता है। जब सारा दृश्यमान कार्यजगत क्षण-क्षण बिखरकर अपने कारण प्रकृति में लीन होता रहता है, तब किसमें मोह और किसका शोक!

उद्गम की ओर लौटना विश्रांति पाना है, विश्रांति पाना अपनी नियति अर्थात् आत्मसंयम को पाना है। नियति को पाना शाश्वत होना है। शाश्वत होने की पहचान यथार्थ समझ है। भौतिक कार्य-पदार्थों का उद्गम मूल-प्रकृति है, अतएव संसार के पदार्थ प्रकृति में लीन होते हैं। परंतु ज्ञान का उद्गम आत्मा है। अतएव जब हमारा ज्ञान आत्मा की तरफ

लौटता है तब वह विश्राम पाता है। विश्राम पाने का तात्पर्य ही है अपनी नियति-विधान-आत्मसंयम को पा जाना। जब मनुष्य आत्मसंयम को पा गया, तब वह शाश्वत हो जाता है, अविचल-अविनाशी स्वरूप में स्थित हो जाता है।

शाश्वत होने की पहचान है यथार्थ समझ। यथार्थ समझ है, मिटने और छूटने वाली वस्तुओं में मोह न करना। छूटनेवाली वस्तुओं में मोह करके सारा संसार दुखी है। सही समझ का फल है दुखों से सर्वथा रहित हो जाना और वह तभी होगा जब देह से लेकर समस्त दृश्यमान संसार का मोह सर्वथा छूट जाये।

यदि शाश्वत से अपरिचित रहे, तो दिग्भ्रमित होंगे और पाप में गिरोगे। प्रकृति का शाश्वत विधान एवं अपरिवर्तित नियम है, बनना-बिगड़ना। यदि इस तथ्य को ध्यान में नहीं रखा जायेगा तो दृश्यमान पदार्थों में मोह करके सदैव शोक से घिरे रहना होगा। यही है दिग्भ्रमित होना, शांति की दिशा भूलकर अशांति-पथ में चले जाना। फिर संसार के प्रलोभनों में डूबा आदमी पाप करेगा। अतएव उसका दुख गहराता जायेगा।

आत्मा शाश्वत है। यदि उसका परिचय नहीं होगा, तो अंतर्मुखता का रास्ता नहीं मिलेगा। फलतः बहिर्मुख होकर भटकना होगा। बहिर्मुखता के प्रवाह में पड़कर पाप में गिरना ही होगा।

जो शाश्वत को जान लेता है, वह सहिष्णु हो जाता है। सहिष्णु होना निष्पक्षता का प्रारंभ है। जो प्रकृति और आत्मा के शाश्वत स्वरूप को तत्त्वतः समझ लेता है और उसी के अनुसार चलता है, वह सहनशील हो जाता है। वह जगत के शाश्वत विधान को जानता है कि यह द्वंद्वात्मक है, दो विरोधी तत्त्वों का जोड़ा है—जड़-चेतन, सुख-दुख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, हानि-लाभ, राग-द्वेष, जन्म-मरण, स्तुति-निंदा, सत्कार-तिरस्कार, शत्रु-मित्र आदि। ऐसे संसार में अहंकारी बनकर रहनेवाला सदैव दुखी रहेगा। जो निर्मान होकर रहेगा वह सहनशील होगा। सब कुछ सहन कर लेना ही साधना है।

आत्मा शाश्वत है, अमर है, असंग है। उसमें संसार का कोई प्रपंच नहीं है। सारा प्रपंच देह-संबंध से है, जो रहने वाला नहीं है। न देह रहेगी और न दृश्यमान संसार का संबंध रहेगा। फिर क्षणिक संबंध के द्वंद्वों में क्यों उलझना! अतएव प्रकृति-प्रपंच की शाश्वतता है निर्माण-विनाश और आत्मा की शाश्वतता है उसका अकेलापन। इस शाश्वत तत्त्व को ठीक से समझ लेनेवाला मनुष्य सहनशील हो जाता है; और सहनशील होना उसकी निष्पक्षता का प्रारंभ माना जायेगा। अनुकूल-प्रतिकूल के द्वंद्व से निष्पक्ष।

निष्पक्षता स्वामित्व का प्रारंभ है। निष्पक्ष व्यक्ति अपने आप का स्वामी हो जाता है। जो सहनशील और निष्पक्ष है वह अपना स्वामी है, अपने आप का सम्राट है। वही व्यक्ति किसी समूह का भी स्वामी होने योग्य होता है, जो वस्तुतः उस समूह का सेवक है। जो अपने आत्मा का स्वामी होता है, वह किसी व्यक्ति या समूह की सेवा सेवक बनकर करता है। जो अपना स्वामी हो गया उसे किसी दूसरे के ऊपर स्वामी बनने की भूख नहीं रह जाती। वह सेवक बनकर समाज की सेवा करता है। जो अपनी घृणित महत्त्वाकांक्षाओं का गुलाम है, वही किसी व्यक्ति या समूह का स्वामी बनने की दुराशा रखता है। सहनशील और निष्पक्ष व्यक्ति अपने आप का स्वामी होता है।

स्वामित्व स्वर्ग की ओर ले जाता है। जो संसार से निष्काम है, वही सहनशील और निष्पक्ष है। वही अपने आत्मा का स्वामी है। यह आत्म-स्वामित्व स्वर्ग की ओर ले जाता है। दुनिया भर के पौराणिकों के स्वर्ग घृणित विषय-वासनाओं तथा विषय-भोगों के बड़े-चढ़े काल्पनिक रूप हैं। किंतु संसार के सभी अध्यात्मवादियों का स्वर्ग मन की पूरी निर्मलता तथा शाश्वत शांति है। अपने आत्मा का स्वामी निर्मल मन का होता है। वह शाश्वत शांति में विहार करता है।

स्वर्ग ताओ की ओर ले जाता है। आध्यात्मिक ताओ आत्मा का स्वाभाविक रुझान है—अंतर्मुख हो जाना, असंग एवं केवल हो जाना, अद्वैत हो जाना,

आत्मतृप्त एवं कृतकृत्य हो जाना। ताओ स्थायित्व की ओर ले जाता है। कृतकृत्यता ही स्थायित्व है। पूर्ण आत्मसंतोष ही स्थायित्व है।

फिर आप जीवनभर संकट-मुक्त रहेंगे। जिसने जगत की क्षणभंगुरता को समझा, आत्मा की अमरता को समझा; इसके फल में जो सहनशील हो गया, निष्पक्ष हो गया, आत्म-स्वामी हो गया, निर्मलता का स्वर्ग पा गया, अंतर्मुख हो गया, स्थिर संतोष पा गया, उसके जीवन में दुख-संकट आने का प्रसंग ही नहीं है।

वह तो पहले से ही जानता है कि संसार द्वंद्वात्मक है। यहां केवल अनुकूलता, सुख, प्रेम, सत्कार, स्तुति आदि पाने का व्यामोह नहीं करना चाहिए; क्योंकि इनके विपक्ष वाले द्वंद्व प्रतिकूलता, दुख, घृणा, तिरस्कार, निंदादि मिलने ही हैं। और इन बातों के दृढ़ बोध से जो पृथ्वी के समान धैर्यवान तथा सहिष्णु हो गया, उस पर

कौन संकट आयेगा? वह तो सभी द्वंद्वों का पहले से स्वागत करने के लिए तैयार बैठा है। वस्तुतः वह इतना सहिष्णु और आत्मविजयी हो जाता है कि उसको कहीं संकट दिखता ही नहीं। वह समझता है कि यह तो होना ही है। इसमें संकट क्या है। आत्मविजयी सारे संकटों से पार होता है।

मन की चंचलता एवं मानसिक उद्वेग सबसे बड़ा दुख है। यह दुख हमारी अपनी कायरता का फल है। हमारी कायरता है इस क्षणभंगुर, अनात्म और दुखपूर्ण संसार से सुख पाने की इच्छा। सभी मनुष्य अनेक इच्छाओं के कारण स्वयं दुखी हैं। उनसे हमें सुख क्या मिलेगा? सुख बाहर से मिलने की वस्तु है भी नहीं। सच्चा सुख मन की गहरी शांति है, और यह संपूर्ण अहंकार और कामना छोड़ देने पर आती है। अतएव जिसने अहंकार-कामना का पूर्ण त्याग कर दिया, वह स्वयं सुख-सागर है।

परख-कसौटी

लेखिका—श्रीमती रजनीश

जब हम खेती करते हैं तब फसल के साथ खरपतवार भी उग जाती है इसी प्रकार मन के खेत में सद्गुणों के साथ-साथ अवगुण भी उग आते हैं। लेकिन जो व्यक्ति आत्मशोधन में जीवन बिताते हैं वे इस अवगुण रूपी खरपतवार को उखाड़ फेंकते हैं। नित्य के अभ्यास से वे अपने आप को पूरी तरह शोध लेते हैं और फिर अपनी रहनी पर स्थिर रहते हैं। गुरुदेव की छत्रछाया में रहकर ही यह कार्य सम्पन्न होता है। ऐसे रहनी सम्पन्न संतों को जीवन में पूरी शांति प्राप्त हो जाती है। उनको यह परख कसौटी प्राप्त हो जाती है जिससे नीर-क्षीर का निबेरा किया जाता है। यह जिनके पास है वे जानते हैं कि इसका प्रयोग कब, कैसे और कहां किया जाता है। कसौटी सब जीवों के पास है किसी की धूल चढ़ी हुई, किसी की साफ और किसी की मंजी हुई।

जिस पर सद्गुरु की दया होती है उसको परखा देते हैं। सुनार या जौहरी के पास भी कसौटी होती है जिसकी सहायता से सुवर्ण, रत्न की परीक्षा की जाती है। ठीक इसी प्रकार सब जीवों के पास विवेक की कसौटी है। बुद्धि, विचार आदि सूक्ष्म औजार भी सबके भीतर है। लेकिन किस औजार का कहां प्रयोग किया जाना चाहिए इसके लिए कुशल कारीगर की आवश्यकता है। जैसे बीजक में कहा गया है—

*गुरु सिकलीगर कीजिए, मनहि मस्कला देय।
शब्द छोलना छोलि के, चित्त दर्पण करि लेय ॥*

कुछ व्यक्ति गुण-ग्राह्य प्रवृत्ति के होते हैं वे जहां से भी सद्गुण रूपी खजाना मिलता जाता है वहां से लेते चले जाते हैं, साथ ही कसौटी भी अपने पास रखते हैं “सार-सार को गहि रहे थोथा देइ उड़ाय”। और एक दिन उनके पास ज्ञान का भंडार इकट्ठा हो जाता है। बस

आवश्यकता है उसको सुरक्षित रखने की।

सद्गुरु दीन्हा माल खजाना राखो जुगत लगाई।

पाव रत्ती घटने नहीं पावै दिन-दिन बढ़त सवाई॥

जिसके मन का घड़ा फूटा हुआ है उसमें ज्ञान ठहर नहीं सकता। उसमें सारा ज्ञान जाता है और बह जाता है। यदि वे कंगाल होने से बचना चाहते हैं तो पुनः घड़ा बनवा कर दोबारा अपना भंडार भर सकते हैं। उसको सुरक्षित रखने के लिए अपनी रहनी को कस कर रखते हैं। कभी-कभी प्राणी-पदार्थों में अज्ञानवश कुसंग हो भी जाये तो तुरंत उस कुचिंतन के छेद को भर देना चाहिए और अपनी रहनी पहले से भी अधिक कस लेनी चाहिए।

करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी कथै सो नाती।

रहनी रहै सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी॥

“दया, क्षमा, सत्य, धीर कहाई, लक्षण जान हंस के भाई।

*इनको गहै मिटै जड़ताई, जीव दया नित धार के कर अन्तः
पवित्र सारा॥”*

जो संत हमारे लिए आध्यात्मिक पूंजी छोड़कर गये हैं उस पूंजी को अर्जित करके ज्ञान का भंडार भरने में प्रयत्नशील रहना चाहिए। बूंद-बूंद से सागर बन जाता है। नहीं तो ‘बाहर भरा अन्दर खाली’। बाहर सम्पन्न अन्दर विपिन्न रह जायेंगे। एक दिन काल झपट लेगा इस जीवन को। ‘सब टाट पड़ा रह जायेगा, जब छोड़ चलेगा बंजारा।’

हीरे लालों की कीमत होती है श्वास की नहीं।

“एक श्वास जो खाली जात है त्रिलोकी का मोल

हीरा तो दामो बिके बोल का मोल न तोल॥”

“धन और जोबन का गर्व कबहुँ न कीजिए भाई।

देखत ही मिट जायेंगे ज्यों बादल की छाँहि॥”

ऐसी बात नहीं कि परिवर्तन, तरक्की होनी नहीं चाहिए। सड़ी-गली परम्पराओं को निकालने में कोई बुराई नहीं है। लेकिन क, ख, ग ही भूल जायेंगे तो इतिहास नहीं लिख पायेंगे।

सादा जीवन उच्च विचार में ज्ञान ज्यादा सुरक्षित रहता है। लैंड लाइन से मोबाइल, कम्प्यूटर से लैपटाप

बनाने में तो कोई बुराई नहीं है लेकिन इनके दुरुपयोग में है। इसी प्रकार गुरुमुखी से रजोमुखी, मायामुखी होने में है संतों के लिए।

परख कसौटी का प्रयोग करते हुए स्थूल रूप से दिखने वाले कृमि-कीट आसानी से दिखाई दे जाते हैं लेकिन सूक्ष्म कीटाणुओं को देखने के लिए विवेक रूपी सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता पड़ती है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य के मोटे-मोटे दुर्व्यसन जैसे—मदिरा-मांस भक्षण, बीड़ी, पान, तम्बाकू आदि दिखाई दे जाते हैं लेकिन बारीक दुर्गुणों को देखने के लिए सद्ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ती है। ये हमारे हृदय की सारी कसर-खोट दर्शा देते हैं। ऐसे-ऐसे दुर्गुणों से अवगत कराते हैं जिनको हम स्वयं भी नहीं जान पाते। बिना जाने हम किसी भी वस्तु का त्याग व ग्रहण नहीं कर पाते। ‘सद्ग्रन्थ’ ऐसा आइना दिखाते हैं जिसमें हृदय की छिपी हुई सारी धूल-मिट्टी दिखाई दे जाती है। फिर उसको विचार रूपी झाड़ू से साफ करने में आसानी हो जाती है।

कुछ व्यक्ति काग प्रवृत्ति के होते हैं कितना भी कपूर खिलाओ फिर भी गन्दगी में ही लिप्त रहते हैं। जैसे सत्संग सुनने बैठेंगे, बोलेंगे—हां साहेब-हां साहेब, कह तो ठीक रहे हो लेकिन वहां से उठे तो वही ‘ढाक के तीन पात’। जैसे आकाश में बिजली चमकी फिर गायब। ऐसे ही एक क्षण ज्ञानोदय हुआ फिर गायब।

‘जस नीम के कीट को नीमहिं लागे पियार।’

कुछ हंस प्रवृत्ति के होते हैं उनको कितना भी कोशिश करो वे क्षीर के सिवाय कुछ नहीं ग्रहण करते हैं।

कुछ काग व हंस मिश्रित प्रवृत्ति के होते हैं। वातावरण, परिवेश, रहनी-गहनी से उनका हंसत्व दब जाता है। यदि कोई हंस जीव चेता दे तो हंसत्व निखर उठता है।

‘गुरु दया करे जब कागा से हंस बना दें।’

‘हंसा भाई हंसा मिले सुख होई।’

जीवन अमूल्य है, इसे व्यर्थ न जाने दें

लेखक—श्री शिवप्रसाद मिश्र

गंगा तट पर गौरीशंकर घाट बहुत प्रसिद्ध है। इसी घाट के समीप हरे-भरे वृक्षों की घनी छाया में महात्मा बिहारी बाबा की कुटी है। बाबा का अधिक समय तप-साधना में बीतता है। शाम को भक्तों से मिलते हैं, उनके बीच अध्यात्म की चर्चा करते हैं।

एक दिन की बात है, नित्य की तरह भक्त जन कुटी के बाहर बैठे थे। बाबा कुटी से निकलकर अपने आसन पर बैठने वाले ही थे कि एक भद्र महिला उनका पांव पकड़कर रोने लगी। बाबा ने कहा—बेटी, बैठ जाओ, धैर्यपूर्वक बताओ, तुम्हें क्या कष्ट है? ऐसे रोने से मैं कैसे कुछ समझ सकता हूँ। महिला आंचल से आंसू पोंछती हुई बाबा के पास बैठ गई और बोली—महात्माजी, मैंने सुना है आप बहुत दयालु हैं, आपके आशीर्वाद से दुखियों का दुख दूर हो जाता है, मैं इसी कामना से आपके पास आई हूँ। मेरे एक ही बेटा है। जब यह छोटा था तभी इसके पिताजी का देहान्त हो गया। मैंने बेटे को हर तकलीफ सहकर पाला-पोषा, पढ़ाया-लिखाया। उसे पंजाब में सरकारी नौकरी भी मिल गई। मैं अनपढ़ हूँ किन्तु उसकी शादी पढ़ी-लिखी लड़की से किया। कुछ समय बाद मेरे घर पोते का जन्म हुआ। दिन भर उसे अपनी गोद में खेलाती, दुलारती और लोरी सुनाती रहती। मेरे पति के असामयिक मृत्यु का दुख धीरे-धीरे घटने लगा।

महात्माजी, मेरी बहू में न जाने कब के ढके-मूँदे गन्दे संस्कार उपजने लगे। मैं उसे प्यार करती थी और वह मुझे अनपढ़ गंवार महिला समझती थी। डांटना-फटकारना तो दूर, मैंने उसे कभी कटु वचन भी नहीं कहा। यदा-कदा उसने मेरे साथ अभद्र व्यवहार करना शुरू कर दिया। कभी पोता मेरी गोद में रोने लगे तो वह मुझे कटु वचन कहती और उसे मुझसे छीन लेती। बहू की अपमानजनक बातें मैं दो कारणों से सहती रही। एक तो गांव-पड़ोस के लोग कहेंगे कि एक ही बहू है उससे

भी इसकी नहीं पटती। बहू का दोष न देखकर मुझे ही दोषी कहेंगे। दूसरा कारण पोते का मोह। अपनी तेज बातों की झोंके में बच्चा न सम्हाल पाने का वह मुझ पर आरोप लगाती है किन्तु वह यह भूल जाती है कि उसका पति भी कभी शिशु था और मेरी गोद में पाला-पोषा गया है।

महात्माजी, मुसीबत ने मेरे जीवन में एक और नया करवट बदला। मेरी बहू ने मेरे बेटे को न जाने कौन-सी घूटी पिलाई कि उसने मुझसे बोलना ही बंद कर दिया है। पंजाब में उसकी नौकरी है। महीने में एक बार दो तीन दिन के लिए आता था लेकिन वह मुझको पहचानता ही नहीं। ऐसी हृदयहीनता उसमें कभी नहीं थी। वह सदैव मेरा सम्मान करता था, पर अब तो वह मुझे मां भी नहीं कहता। इतना ही नहीं, एक दिन वे दोनों मुझे गांव में अकेले छोड़कर पंजाब चले गये। तीन वर्ष बीत गये वे गांव नहीं लौटे और मैं पुत्रवती होकर भी किसी बांझ औरत की तरह अपना दिन काट रही हूँ। मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। घर में लगे दरवाजों की सिटकनी मेरे हाथों को पहचान गई है जब खोलूँ दरवाजा खुले—जब बंद करूँ तब बंद हो जाये। घर-आंगन सब काटने दौड़ते हैं। मेरे मन में बहुत तड़पन है महात्मा जी, मेरी रक्षा कीजिए, मुझे रास्ता बताइए। इतना कहकर वह महिला पुनः रोने लगी।

बिहारी बाबा बड़ी विनम्रता से बोले—बेटी, धैर्यपूर्वक मेरी बात सुनो। यह संसार दुख से भरा पड़ा है। तुम्हारा बेटा तीन वर्ष से घर नहीं आया। जरा विचार करो मां कौशिल्या के बेटा-बहू चौदह वर्ष बाद अयोध्या आये। सुमित्रा अपने बेटा और उर्मिला अपने पति लक्ष्मण से चौदह वर्ष दूर रहीं। यहां सुखी कौन है? किसको दुख नहीं देखने पड़े हैं? किसी ने ठीक ही कहा है—

*व्याकुल न हो कर धीर धर, विधिवाम के अन्धेर से।
किसको नहीं दुख देखने पड़ते, दिनों के फेर से॥*

गान्धारी को देखो, जिसने अपने सौ वीर पुत्रों को युद्ध-यज्ञ में आहुति दे दी। जरा मन्दोदरी को एक पलक निहारो, जिसने अपने सभी बेटों के साथ महापराक्रमी पति रावण को भी खो दिया। विचार करो, क्या इन सबों को पीड़ा नहीं हुई होगी? रामायण की एक घटना तुम्हें सुनाता हूँ ध्यानपूर्वक सुनो। राम-रावण का युद्ध समापन पर था। विभीषण को छोड़कर रावण के भाई-परिवार, पुत्र-पौत्र सभी मारे जा चुके थे। मन्दोदरी ने रावण को आखिरी बार समझाते हुए फिर कहा, 'महाराज, मैं आपसे विनती करती हूँ कि आप अपने भाई विभीषण की तरह राम की शरण में चले जाइए। राम को सीता लौटा दीजिए। राम आपको क्षमा कर देंगे। हमारा आपका इसी में कल्याण है। सीता के मोह के वशीभूत रावण ने मन्दोदरी को उत्तर दिया— 'महारानी मन्दोदरी, तुम भय और चिन्ता में पड़ गई हो। मेरे पराक्रम के सामने दोनों राजकुमार या तो अपना प्राण गवायेंगे या फिर अयोध्या भाग जायेंगे। सुग्रीव मुझसे क्षमा मांगकर अपनी सेना के साथ जिस पुल से समुद्र के इस पार आया है वह उसी पुल से सेना के साथ किष्किंधा लौट जायेगा। वह दिन दूर नहीं है जब हम लंका में विजयोत्सव मनायेंगे। मन्दोदरी ने विनम्रतापूर्वक रावण से कहा— 'महाराज, हम थोड़ी देर के लिए मान लें कि आप विजयी होंगे। किंतु जरा धैर्यपूर्वक सोचिए—विजयोत्सव किसके साथ मनायेंगे। हम, आप और लंका की विधवाएं—यहां और हैं कौन जो विजयोत्सव में सम्मिलित होंगे। भोजनालय में सभी बेटों के आसन समेटकर सदा के लिए रखे जा चुके हैं। भाई कुम्भकरन न दीर्घ निद्रा में सोयेगा न जागेगा वह तो संसार छोड़ चुका है। पौत्रों के कोलाहल और उनकी किलकारियां सन्नाटे में बदल गई हैं। महाराज, लंका में किसके साथ विजयोत्सव मनायेंगे आप?' बेटी, सारा जग जानता है कि समझदार मन्दोदरी नहीं समझा पाई रावण को और सीता के मोह में ग्रसित रावण युद्ध में राम के हाथों मारा गया।

जिन देवियों के दुःख का वर्णन मैंने तुम्हारे सामने

किया बताओ, तुम्हारा दुख इनके सामने कहाँ उठरता है? तुम्हारे बेटे-बहू तुमसे दूर रहते हैं किन्तु जहां हैं सुखी हैं। कभी उनके मन में आयेगा वे गांव भी अवश्य आयेंगे। तुम्हें अपने बारे में सोचना चाहिए। अपने आप को पहचानना चाहिए। मानव तन बड़े भाग्य से मिलता है। ऋषि-मुनी, संतजन इसे मोक्षद्वार कहते हैं। तुम्हें अपने बेटे, बहू और पोते का मोह सता रहा है। मोह एक प्रकार का रोग है। इसे ठीक से समझो और अपने आप में सदैव प्रसन्न रहो। सुख-दुख दिन और रात की तरह आते-जाते रहते हैं। जिसने संसार में जन्म लिया है उसे सुख-दुख की राह से गुजरना पड़ता है। विवेकवान नर-नारी अपने दुख को भी सुख से जीते हैं। क्योंकि वे जानते हैं न तो किसी के जीवन में अन्धेरा स्थायी है और न प्रकाश ही। अतः अपने आप को समझो। जैसे-जैसे तुम्हारा मोह अपने बेटे के प्रति कम होता जायेगा वैसे-वैसे तुम अपने आप में सुख का अनुभव करने लगोगी। जीवन के बचे समय को सत्संग में लगाओ। किसी सद्गुरु की चरण-शरण में रहो। सदा सुखी रहोगी। मोह से उपजी पीड़ा मिट जायेगी। जितना हो सके साधु-संतों की सेवा और दीन-दुखियों की सहायता करो। बहू-बेटे पंजाब में खुश हैं, तुम यहां प्रसन्नचित्त रहकर जीवन बिताओ। जीवन बड़ा मूल्यवान है—इसे व्यर्थ न जाने दो।

संत कबीर साहेब की यह साखी याद रखो—

तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय।

कोई काहू का है नहीं, देखा ठोंक बजाय॥

महिला ने बड़ी विनम्रतापूर्वक बिहारी बाबा से कहा—महात्मन्, आपकी अमृतमय वाणी से मेरा मन शान्त हो गया। मेरी उलझन समाप्त हो गई। भगवन, आपका दर्शन करके मैं धन्य हो गई। बाबा ने महिला से कहा—बेटी, प्रसन्नतापूर्वक घर जाओ। जीवन के बचे समय को ध्यान-साधना में लगाओ। सुख कहीं बाहर नहीं तुम्हारे भीतर है। जितना हो सके सत्संग करो, सत्संग से जीवन का अन्धेरा मिट जाता है। इतना कह कर बाबा अपने आसन से उठकर कुटी की ओर चल दिये और सभी भक्त जन उन्हें प्रणाम कर अपने-अपने घर की राह पकड़ लिये।

शंका समाधान

प्रश्न—विनीत, इलाहाबाद, उ. प्र.

1. प्रश्न—क्रोध और वैर में क्या अंतर है?

उत्तर—किसी की किसी प्रकार की भूल देखकर, किसी से किसी प्रकार प्रतिकूल बात-व्यवहार पाकर, अपनी कामना की पूर्ति न होने पर आवेश-आक्रोश में आ जाना, उत्तेजित हो जाना क्रोध है और उस भूल की बराबर याद कर मन में क्रोध की गांठ बन जाना, बदला लेने की भावना होना वैर है।

क्रोध तत्काल अपशब्द कहकर, गाली देकर, मार-पीटकर या कुछ नुकसान पहुंचाकर शांत हो जाता है। किंतु बाद में इसके लिए पश्चाताप होता है, लेकिन वैर में जिसके प्रति वैर हो जाता है उसे कैसे अधिक-से-अधिक हानि पहुंचायी जाये, अधिक-से-अधिक दुख दिया जाये यह चिंतन चलता रहता है और उसे किसी प्रकार हानि पहुंचाकर या दुख देकर मन प्रसन्न हो जाता है। जिसके प्रति वैर हो जाता है उसे देखकर या उसके बारे में सुनकर मन दुखी हो जाता है और उसे किसी प्रकार विपत्ति, कष्ट या दुख में पड़े देखकर मन पाशविक आनंद का अनुभव करता है।

यद्यपि वैर का जनक क्रोध ही है। बिना क्रोध के वैर पैदा ही नहीं हो सकता। किसी की भूल को न भूलकर बराबर याद करते रहने से वैर अधिक पुष्ट होता चला जाता है। क्रोध और वैर में खास अंतर यह है कि क्रोध तत्काल भड़ककर शांत हो जाने वाली आग के समान है, किन्तु वैर निरंतर जलने वाली आग है या दावानल तथा ज्वालामुखी के समान है, जो बहुत कुछ को भस्मीभूत करके और भयंकर नुकसान पहुंचाकर करके भी शांत नहीं होती।

यदि वैर को शांत करना है तो क्रोध पर नियंत्रण-संयम करना होगा और क्रोध को शांत करने के लिए कामना और अहंकार पर संयम करना होगा। यह ध्यान रखना है कि विनम्रता, निष्कामता और प्रेम की शीतल जल से ही क्रोध और वैर की आग शांत होगी।

2. प्रश्न—जीवन किसे कहते हैं?

उत्तर—जीवन का अर्थ है उपस्थिति काल। मकान के निर्माण से लेकर उसके गिर या नष्ट हो जाने के बीच की जो अवधि है, वही मकान का जीवन है। बीज के अंकुरित होने से लेकर वृक्ष के सूखकर या कटकर गिर जाने तक की जो अवधि है, वही वृक्ष का जीवन है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के बीच की जो अवधि है, वही मनुष्य का जीवन है। शरीर में जीव की उपस्थिति काल प्राणियों का जीवन है।

जन्म और मृत्यु हमारे हाथ में नहीं है, किन्तु जीवन हमारे हाथ में है। हमें कब, कहां, किस कुल-परिवार में, कैसे जन्म लेना है न तो यह हमारे हाथ में है और न कब, कहां, किस ढंग से मौत आयेगी, यह हमारे हाथ में है, किन्तु किस ढंग से हमें अपने जीवन का निर्माण करना है, जीवन को कैसे जीना है यह हमारे हाथ में है। इसके लिए अच्छी संगत, सत्साहित्य का अध्ययन, सकारात्मक चिंतन और सावधानीपूर्वक कर्म करते रहने की आवश्यकता है।

माता-पिता से जन्म मिलता है जीवन नहीं। हां, जीवन-निर्माण में माता-पिता, समाज सहयोगी हो सकते हैं, किन्तु हमें विवश नहीं कर सकते कि हमें कैसा जीवन जीना है। इसका निर्णय हर व्यक्ति स्वयं करता है। बाहरी रहन-सहन के आधार पर किसी के जीवन का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। जीवन का बाहरी ढांचा तो नकली और ओढ़ा हुआ होता है, असली जीवन आंतरिक होता है और उसका निर्माता मनुष्य स्वयं होता है।

प्रश्न—धर्मेन्द्र मौर्य, देवलखा, बहराइच, उ. प्र.

1. प्रश्न—मन-इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण कैसे करें और मन सदैव शांत, शीतल एवं प्रसन्न कैसे रहे?

उत्तर—जब मन-इंद्रियों की चंचलता एवं बहिर्मुखता में दुख का पूरा निश्चय हो और उनकी एकाग्रता एवं अंतर्मुखता में सुख का पूरा निश्चय हो, तब मन-इंद्रियों पर नियंत्रण हो जायेगा। हां, इसके लिए स्वाध्याय, सेवा, सत्संग, साधना एवं निरंतर जागरूकता-सावधानी की आवश्यकता है।

बाहर से आये घात-प्रतिघात को प्रतिक्रियारहित होकर सहन करने से, सभी परिस्थितियों में समता बनाये रखने से, निष्कामभाव पूर्वक सेवापरायणता से, सारी अहंता-ममता त्यागकर सब तरफ सबसे सर्वथा अनासक्त रहने से मन सदैव शांत, शीतल और प्रसन्न रहेगा।

ज्ञान की जो बातें जानते-समझते हो उनका जीवन में आचरण करना शुरू करो, मन-इंद्रियों पर नियंत्रण होता चला जायेगा और मन शांत, शीतल, प्रसन्न बना रहेगा।

प्रश्न—रामकुमार, जयपुर, राजस्थान

1. प्रश्न—क्या मन पूरा शांत हो सकता है?

उत्तर—हो सकता है, परंतु मेरी या किसी अन्य की बात को न मानकर प्रयास करके देखिये। एक मन ही ऐसी चीज है जिसे हम पूर्णरूपेण स्ववश-शांत करके रख सकते हैं। मन को छोड़कर और किसी भी चीज पर हमारी स्ववशता नहीं है। परंतु यह कहने-सुनने से नहीं होगा, इसके लिए समर्पित होकर मेहनत करने की आवश्यकता है और साथ ही सब तरफ से निष्पक्ष होने की।

प्रश्न—सुनीता, धमतरी, छत्तीसगढ़

1. प्रश्न—कहते हैं कि प्रेम से जीवन में स्वर्ग फलित होता है और अनासक्ति से मोक्ष। तो क्या जीवन में प्रेम और अनासक्ति एक साथ रह सकते हैं?

उत्तर—प्रेम और अनासक्ति एक दूसरे के विरोधी नहीं, किन्तु एक दूसरे के पूरक हैं और एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब हम प्रेम और मोह को एक मान लेते हैं तब कहने लगते हैं कि प्रेम और अनासक्ति एक साथ कैसे रह सकते हैं। मोह और अनासक्ति में तो विरोध है, परन्तु प्रेम और अनासक्ति में विरोध नहीं है। मोह एक-दो-चार या कुछ सीमित लोगों के प्रति होता है, किन्तु प्रेम में कोई सीमा नहीं होती। मोह में प्रतिकूल कहे जाने वालों के प्रति द्वेष और वैर की गांठ बन जाती है, परन्तु प्रेम में जिनसे प्रतिकूल व्यवहार मिलता है उनके प्रति भी हितकामना रहती है, और यह तभी हो पाता है जब अनासक्ति हो।

महावीर स्वामी, तथागत बुद्ध, ईसा मसीह, सद्गुरु

कबीर, गुरु नानक तथा अन्य और अनेक संत-महापुरुषों के मन में मानव मात्र के प्रति ही नहीं प्राणिमात्र के प्रति अगाध प्रेम था, किन्तु उनके मन में किसी के लिए आसक्ति नहीं थी, यहां तक कि अपनी मानी गयी देह के प्रति भी। उनका मन सबसे सर्वथा अनासक्त था। जिसके प्रेम का दायरा जितना विस्तृत होता जाता है उसके मन में अनासक्ति उतनी पुष्ट होती जाती है और जिसका मन जितना ज्यादा अनासक्त होता है उसका प्रेम उतना विस्तृत होता है।

2. प्रश्न—संत-महात्मा कहते हैं कि आदमी को निर्भय होना चाहिए, किन्तु कुछ लोग कहते हैं कि जीवन में डर-भय की भी आवश्यकता है। इन दोनों में सच क्या है?

उत्तर—उक्त दोनों बातें सच हैं, किन्तु कहां-किस बात के लिए निर्भय रहना चाहिए और कहां-किस बात के लिए भय करना चाहिए—यह समझने की आवश्यकता है।

भय से ही जीवन में निर्भयता आती है, किन्तु जो आदमी भय छोड़ देता है वह सदैव भयभीत रहता है। कैसे? जो आदमी दोष, दुर्गुण, दुराचरण, कुसंग, पापाचरण से भय करता है और इनसे बचकर रहता है वह निर्भय होता चला जाता है। जो आदमी डरता रहता है कि मुझसे किसी का किसी प्रकार नुकसान न हो जाये, किसी को दुख न मिले, मेरी जबान से कटु वचन न निकले, किसी का अपमान न हो, वह सदैव सावधानीपूर्वक जीवन जीता है और इसलिए निर्भय होता चला जाता है। किन्तु जो आदमी दोष, दुर्गुण, दुराचरण, पापाचरण करने में निर्भय हो जाता है और ऐसा करने में अपनी बहादुरी समझता है वह अंदर से भयभीत होता है।

दुख, प्रतिकूलता, अपमान, धनहानि, प्रिय वियोग, अप्रिय संयोग, रोग-व्याधि, यहां तक मृत्यु से भी डरने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ये जीवन की अवश्यंभावी घटनाएं हैं। इनसे आज तक न कोई बचा है और न आगे कोई बच सकेगा। इनसे भयभीत रहने से ये घटनाएं रुकेंगी तो नहीं, जो कर्तव्य-कर्म हैं उन्हें भी ठीक से नहीं कर पायेंगे और न सुख की नींद सो पायेंगे। इसलिए इनसे तो निर्भय रहना है। छुटने वाली

चीजें छुटकर ही रहेंगी, फिर उसके लिए भय क्यों। जो आपका है वह कभी छुटेगा नहीं, छुटेगा वही जो आपका नहीं है, फिर भय क्यों। इसलिए सदैव निर्भय रहो। भय करना है तो कुसंग, दोष-दुराचरण, पापाचरण से करो, क्योंकि इनका परिणाम स्व-पर सबके लिए दुखदायी होता है।

निष्कपट भाव से विनम्रतापूर्वक सत्य-धर्म के मार्ग पर चलते हुए सब समय निर्भय रहो। याद रखो कि निर्भयता ही अमरता है किंतु गलत कर्मों-आचरणों से सदैव भयभीत रहो। यह भय दुखदायी नहीं सुखदायी है, स्व-पर सबके लिए हितकर है। —धर्मेन्द्र दास

समझ लीजिए कि आप अच्छा कर रहे हैं

लेखक—श्री जिग जगलर

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब समझते हैं कि असफलता महज एक घटना है, व्यक्ति नहीं। कल जो था, वह बीत गया और आज जो है, वह एक नया दिन है।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब बीते कल से दोस्ती रखते हैं, वर्तमान को जीते हैं और भविष्य के लिए आशावादी होते हैं।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब आप जानते हैं कि कोई एक जीत आपको बना नहीं सकती और एक हार आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकती।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब विश्वास, आशा और प्यार से परिपूर्ण होते हैं। क्रोध, लालच, अपराधबोध, ईर्ष्या व बदले की भावनाएं किसी भी सूरत में आप पर हावी नहीं होतीं।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब अपनी संतुष्टि के स्तर से आगे निकलना जानते हैं। अधिकारों की जगह अपनी जिम्मेदारियों को भी समझते हैं।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब जानते हैं कि सही का साथ देने में असफल होना, भविष्य में खुद को उसी गलती का शिकार होने की ओर ले जाना है।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब जो है और जैसे है, उसमें सुरक्षित महसूस करते हैं। प्रकृति से आपका तालमेल होता है और आसपास के लोगों के साथ जुड़ाव।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब अपनी चुनौतियों और बाधाओं को भी दोस्त बना लेते हैं। जिन्हें अपना मानते हैं, वे आपको प्यार और आदर देते हैं।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब यह जानते हैं कि देने का सुख दूसरों से मिलने वाले सुख से कहीं कम नहीं है।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब चिड़चिड़े व्यक्ति के प्रति हंसमुख, कठोर के प्रति विनम्र और जरूरतमंद के प्रति उदार रहते हैं।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब किसी अनचाहे को प्यार कर पाते हैं, निराश को आस देते हैं, बेसहारा के दोस्त बनते हैं और हताश को उत्साह दे पाते हैं।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब अपने बड़े होने से जुड़ी जिम्मेदारियों को भी समझते हैं।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब अपनी स्थितियों को समझते हैं और भूल को स्वीकार लेते हैं।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब प्रकृति द्वारा मिली शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक क्षमताओं का इस्तेमाल मानव जीवन को और बेहतर बनाने के लिए करते हैं।

—आप बेहतर कर रहे होते हैं, जब इस ब्रह्मांड के निर्माता के समक्ष खड़े होकर कहते हैं कि मैं खुश हूँ और आपका सेवक हूँ।

(साभार : हिन्दुस्तान, 26 जनवरी, 2015)

धरती पर स्वर्ग

(परम पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा, श्री कबीर संस्थान,
नवापारा राजिम, रायपुर, छ.ग. में दिया गया प्रवचन। प्रस्तुति—रामकेश्वर जी)
(गतांक से आगे)

गलत काम करने से अंतरात्मा कचोटती है और इसमें क्षमा की कोई गुंजाइश नहीं है। मान लीजिए हमने चोरी की, किसी की हत्या की या किसी के साथ व्यभिचार किया और उसके पश्चात भगवान के सामने घुटने टेक दिये और हम कहे कि हे भगवान! हमें क्षमा कर दो! क्षमा कर दो!! लेकिन भगवान क्षमा नहीं करेगा। चलो मान लें कि भगवान ने क्षमा कर दिया लेकिन सोचिये, जिसकी हत्या हमने की है, क्या उसने हमें क्षमा किया। जिसकी इज्जत हमने बिगाड़ी या जिसके घर में हमने आग लगायी क्या उसने हमें क्षमा किया? उसने तो क्षमा नहीं किया तो भगवान कौन होते हैं क्षमा करने वाले।

भगवान क्षमा नहीं करता। लोगों ने ही भगवान का ऐसा रूप गढ़ डाला है कि सारा पाप करो और “भगवान-भगवान” जप कर लो तो सारा पाप कट जायेगा लेकिन यह होने वाला नहीं है। भगवान भी यदि कुछ है तो नियम है। नियम ही भगवान है। अगर नियम का उल्लंघन हुआ तो उसका फल अवश्य भोगना है और इस बात को सिद्ध करने के लिए तमाम उदाहरण हमारे पुराणों में हैं।

पुराणों में अनेक उदाहरण मिलते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि जिनको लोग भगवान मानते हैं, नियमों का उल्लंघन किये तो उसका फल वे भी पाये। जब ऐसे बड़े-बड़े लोगों को नियमों के उल्लंघन का फल मिला है तब हमें नियमों का उल्लंघन करने पर, कैसे फल न मिलेगा! हमें भी उसका फल भोगना पड़ेगा। इसलिए हमारे कर्मों में संस्कारों की जो खमीर उठती है वही हमारे जीवन का संबल बन जाती है। वही रास्ते का खर्चा बनता है। अगर हमने चोरी, हत्या,

व्यभिचार, छल-कपट, दुष्टकर्म, राग-द्वेष, कलह-कल्पना आदि गलत कर्म किये हैं तो इनके खमीर—संस्काररूपी खमीर—मन में उठकर हमारे जीवन को गंदगी से आच्छादित कर देंगे।

चोर आदमी चाहे जहां रहे, उसका दिल धड़कता रहता है कि पुलिस आकर हमें पकड़ न ले। दुष्टकर्म करने वाला सदैव चंचल रहता है जबकि पवित्रात्मा पुरुष सदैव निर्भय रहता है। कर्मों के खमीर क्या हैं—संस्कार। गलत कर्म यदि हुए हैं तो उनके संस्कार हमें पीड़ित करते हैं और अच्छे कर्म हुए हैं तो उनके संस्कार हमें आनन्द देते हैं। गलत संस्कार हमारे लिए कांटे के समान दुखदायी हो जाते हैं और अच्छे संस्कार हमारे लिए फूल के समान सुखद हो जाते हैं। इसलिए साहेब कहते हैं कि ऐसा मानव जीवनारूपी पुर और सत्संगरूपी बाजार पाकर अगर तुम इसमें संबल नहीं किये, अच्छे संस्कारों की पूंजी यदि तुम नहीं बना रहे हो तो समझ लो धोखा खा रहे हो। क्योंकि धन काम न देगा, परिवार काम न देगा, लम्बे-लम्बे भूखण्ड काम न देंगे। विशाल भवन काम न देगा और बहुत-सारी रचनाएं आपका काम न देंगी।

मेरी ही बात लीजिए, मैंने पचासों पुस्तकें लिख दीं, वे छप भी गयीं लेकिन वे पुस्तकें मेरा काम न देंगी। जो बहुत नाम फैल गया है वह भी काम न देगा। अभी मेरी आंखें ढंप जायें तो मेरे अपने कल्पित नाम से आगे चलकर मेरा कोई भी संबन्ध न रहेगा। यहां कुछ स्थायी नहीं है। यहां का सब कुछ क्षणमात्र में एकदम से समाप्त हो जाने वाला है। किंतु मेरा यहां क्या है, मेरी असली कमाई क्या है, इसका ख्याल हमें नहीं होता है।

जो कुछ कूड़ा-कबाड़ बटोरकर समझता है कि मैंने तो कमाई कर ली, कुछ लोहा-लकड़, सीमेंट-पत्थर, भूखण्ड और रुपये-पैसे तथा कुछ मनुष्यों की भीड़ इकट्ठा कर समझता है कि मैंने बहुत बड़ी सम्पत्ति इकट्ठा कर ली और अब मैं उन्नत हो गया वह आदमी बड़ा भोला है क्योंकि असली सम्पत्ति को वह भूल ही गया है। रुपये-पैसे, घर-द्वार, भूखण्ड-मकान, पद-प्रतिष्ठा, विद्या-शिक्षा प्राप्त कर लेना भी एक उन्नति है और एक सफलता है लेकिन वह हमारी अपनी उन्नति एवं सफलता नहीं है। हमारी असली सम्पत्ति है शांति, परमतृप्ति जो हमें इसी जीवन में प्राप्त होनी चाहिए।

मैं प्रायः कहा करता हूँ कि अगर हमारे में विद्या बढ़ गयी तो यह हमारी उन्नति न हुई किन्तु यह विद्या की उन्नति हुई। अगर हम ऊंचे पद पर चले गये तो यह पदोन्नति हुई मेरी अपनी उन्नति न हुई। परिवार बढ़ गया तो परिवार की उन्नति हुई मेरी उन्नति न हुई, धन बढ़ गया तो धन की उन्नति हुई मेरी उन्नति न हुई। मेरी उन्नति तो तब मानी जायेगी, जब मेरा चित्त निर्मल, प्रशांत हो जाये, माया-जाल और द्वन्द्व से छूट जाये। मेरा चित्त जब चिंता करना, दुख मानना छोड़ दे, तभी मेरी उन्नति हुई। अध्यात्म की यही कसौटी है कि दुख मानना खत्म हो जाये।

जीवन में यदि दुख है तो निश्चित है कि जीवन में दोष है। जीवन से जब दोष बिलकुल निकल जाता है तब दुख भी निकल जाता है। किसी से यह कह दो कि तुम दोषी हो, वह क्षुब्ध हो जायेगा। और क्षुब्ध होगा तो निश्चित है कि वह दोषी है क्योंकि दोष हुए बिना कोई क्षुब्ध नहीं होता। किसी भी महापुरुष को देखो, वह क्षुब्ध नहीं हुआ। कबीर साहेब के सामने कितना-कितना विरोध आया लेकिन वे क्षुब्ध नहीं हुए। संत ईसा के सामने कितना विरोध आया किन्तु वे क्षुब्ध नहीं हुए। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि मेरे शिष्य होने की वजह से लोग तुम्हें परेशान करते हैं तो समझ लो कि यह मंगल है। अगर तुम्हारा कोई विरोध करता है तो तुम उसका विरोध न करो। तुम्हारे दाहिने गाल पर यदि कोई थप्पड़ मार दे तो तुम अपना दूसरा गाल भी उसके

सामने कर दो। कबीर साहेब ने कहा है—

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।

जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥

अपने विरोधियों का विरोध कबीर साहेब ने कभी नहीं किया और ऐसे एक-दो नहीं किन्तु अनेक सच्चे संत हुए हैं जो विरोध में नहीं पड़े। वे अपने लिए गाली भरी बात सुनकर क्षुब्ध नहीं हुए।

प्रायः देखा जाता है कि जब किसी महापुरुष की प्रसिद्धि बढ़ने लगती है, उनके समर्थक और प्रशंसक बढ़ने लगते हैं तो उनके कुछ विरोधी भी सहज पैदा हो जाते हैं। प्रायः संसार के सभी महापुरुषों के जीवन में यह बात देखने में आयी है।

एकबार बुद्ध के विराधियों ने एक वेश्या को पैसा देकर पटाया और भगवान बुद्ध को बदनाम करने का एक घृणित षड्यन्त्र रचा। विरोधियों के सिखाये अनुसार वेश्या अपने पेट पर कपड़े बांधकर गर्भवती होने का ढोंग करके, साड़ी वगैरह पहनकर भगवान बुद्ध की सभा में बीच में बैठ गयी। उस समय भगवान बुद्ध सभा में प्रवचन कर रहे थे। वहां बहुत-से भिक्षु और गृहस्थ लोग बैठे थे। कुछ समय तक तो वह वेश्या बैठी रही फिर खड़ी हुई और महात्मा बुद्ध से कहने लगी—“तुम यहां बहुत ज्ञान झाड़ते हो और तुम्हारा ही बढ़ाया हुआ मेरा पेट है। अब मुझे बच्चा होने ही वाला है। बताओ इस होने वाले बच्चे की परिवरिश कौन करेगा?”

वेश्या ने खूब नकली क्रोध दिखाया किन्तु बुद्ध बिलकुल शांत थे। पूरा समाज वेश्या की बात से स्तम्भित हो उठा था। वेश्या नकली क्रोध दिखाते हुए जोर-जोर से श्वास लेने का ढोंग करने लगी। इतने में उसके पेट पर बंधा कपड़ा ढीला पड़कर नीचे गिर पड़ा। उसकी कलाई खुल गयी। लोग हंसने लगे। ऐसी भी घटना बुद्ध जैसे महापुरुष के जीवन में घटी है।

बुद्ध के ही जीवन की ऐसी एक और घटना है। उनके विरोधी लोगों ने उनको बदनाम करने के लिए एक वेश्या को लगाया। वह वेश्या रोज शाम अपने हाथ में गंध और माला लेकर श्रावस्ती से जेतवन को जाती थी।

रास्ते में जब लोग उससे पूछते थे कि “कहां जाती हो इधर रोज-रोज” तो वह बता देती थी कि बुद्ध की गंधकुटी में जाती हूं और रातभर उनके पास रहती हूं। वह वेश्या ऐसा कहती और बुद्ध की कुटी के पीछे से होकर उन लोगों के यहां चली जाती थी जो बुद्ध के विरोधी थे और उस वेश्या को भगवान बुद्ध को बदनाम करने के लिए लगाये थे। वे भी साधु ही थे लेकिन भगवान बुद्ध से जलते रहते थे।

वेश्या बुद्ध के विरोधियों के यहां रातभर रहती और सुबह अस्त-व्यस्त कपड़े में बाल बिखराकर अपने घर लौटती। रास्ते में जब कोई पूछता कि कहां से आ रही हो और इस प्रकार का वेष क्यों बना रखी हो तो वह बताती कि बुद्ध की गंध कुटी में गयी थी और रातभर वहीं रही हूं। ऐसा करते उसके कई दिन बीत गये। फिर एक दिन जिन लोगों ने भगवान बुद्ध को बदनाम करवाना चाहा था, उन्हीं लोगों ने वेश्या को मरवा दिया और उसकी लाश को बुद्ध के आश्रम के पीछे फेंकवा दिया। फिर उन्हीं लोगों ने हल्ला करवा दिया कि बुद्ध और उनके शिष्य कामी हैं। इन्होंने वेश्या के साथ महीनों तक दुराचार किया और फिर उसको मारकर फेंक दिया। इस अफवाह को लेकर श्रावस्ती में बड़ा तनाव हो गया। बुद्ध के भिक्षु जब भिक्षा के लिए जाते तो हर जगह उनकी छींटा-कशी होती। वापस आकर वे भगवान बुद्ध से दुखी होकर कहते कि भगवन्! रोटी ठीक से नहीं मिलती है।

तब बुद्ध उनको समझाते और कहते कि घबराओ मत, भिक्षुओ! सत्य की विजय होती है। सत्य, सत्य होता है और उसी की विजय होती है। तुम लोग घबराओ मत और किसी का भी प्रतिवाद मत करो। यह मत कहो कि हम शुद्ध हैं। शुद्ध और अशुद्ध कहने की कोई जरूरत नहीं है। तुम लोग शांत रहो। धीरे-धीरे घटना की खोज-बीन हुई। सी.आई. डी. विभाग वालों ने खोज-बीन की। जिन्होंने षड्यंत्र किया था और उस वेश्या को मारा था, वे कहीं बैठकर अभिमानपूर्वक बातें कर रहे थे। सी.आई.डी. विभाग वाले उसको सुन लिये और उनको पकड़ लिये। फिर उन्होंने सब कुछ का पता

लगा लिया। सबकुछ का पर्दाफाश हो गया और जनता की समझ में बात आ गयी कि भगवान बुद्ध निर्दोष हैं और उनका भिक्षु समाज भी ठीक है। यह भी लोगों को पता लग गया कि बुद्ध को बदनाम करने के लिए यह षड्यंत्र किया गया था। तो महापुरुषों के लिए ऐसे-ऐसे षड्यंत्र किये जाते रहे लेकिन वे विचलित नहीं हुए।

कबीर साहेब के साथ क्या-क्या न किया गया। कहा जाता है कि उनको बदनाम करने के लिए काशी में एक वेश्या को लगाया गया। कबीर साहेब जब चौक से होकर निकल रहे थे तभी उस वेश्या ने उनके पैर पकड़ लिया और उनसे कहा कि महाराज, आपही का जन्माया बच्चा मेरे है। अब आपही बताइये कि मैं कहां जाऊं !

साहेब भी बड़े निर्भीक और बड़ी तेज बुद्धि के पुरुष थे। उन्होंने उस वेश्या से कहा—“मां, चल मेरी कुटिया में तू भी रह। तू तो मेरी माता के समान है। मैं तेरी सेवा करूंगा।” कहते हैं कि वेश्या उनकी बात सुनकर पानी-पानी हो गयी। इतने सत्य के सामने उनकी झुठई कहां टिकती। प्रचण्ड सूर्य के सामने अंधकार कहां टिकता है।

वेश्या ने कबीर साहेब के पैर पकड़ लिये और कहा—“महाराज, क्षमा कीजिए, आपके विरोधियों ने मुझसे यह षड्यंत्र करवाया है।” इस प्रकार की बातें किंवदन्ती में सुनी जाती हैं। यह बात हुई कि नहीं या हुई तो किस ढंग से हुई यह तो निश्चित नहीं है लेकिन इतना तो निश्चित है ही कि बड़े-बड़े पुरुषों के सामने विरोध आये हैं लेकिन बड़ा वही हुआ जो विरोध का विरोध नहीं किये। जिसने काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि अपने मानसिक शत्रुओं का विरोध किया है, वही बड़ा हुआ है। मनुष्य से लड़ने वाला कभी बड़ा नहीं हुआ है।

इसलिए हमारे जीवन का जो असली संबल है वह दैवी सम्पदा है, पवित्र संस्कारों की पूंजी है। उसको हम अपने जीवन में बनायें। यही हमारी असली उन्नति है। अब इसके साथ-साथ रोटी, कपड़े और घर की जरूरत तो पड़ेगी ही। न पक्का मकान हो कोई हर्ज नहीं लेकिन छानी-छप्पर का तो चाहिए ही क्योंकि पानी जब बरसने लगेगा तो कहां जायेंगे। जब धूप होने लगेगी या ठण्डी

पड़ने लगेगी तो कहां जायेंगे। यहीं आप लोग इतनी बड़ी संख्या में आये हैं तो आपके रहने के लिए धूप-शीत तथा पानी से रक्षा के लिए कपड़ों से घेरकर रावटियां बनायी गयी हैं।

हमारा और आपका शरीर ऐसा है कि इसकी सुरक्षा तो करनी ही पड़ेगी। इसका मतलब यह नहीं है कि हम शरीर निर्वाह का धन्धा तो करें लेकिन जीवन के कल्याण का कार्य न करें। जीवन के कल्याण करने की बात जब कही जाती है तो लोग यह कहते हैं कि क्या महाराज, फिर शरीर का धन्धा नहीं करना पड़ेगा। ऐसी बात नहीं है। वह भी करना पड़ेगा और जीवन के कल्याण का भी कार्य करना पड़ेगा।

कोई डाक्टर थे। एक पेट का रोगी आदमी उनके पास गया और अपने को दिखाया। डाक्टर ने कहा—मैं यह दवा दिये देता हूं। इसको खा लेना और भोजन थोड़ा कम करना। डाक्टर की बात सुनकर वह आदमी नाराज हो गया और कहा—“डाक्टर साहब, आपका मतलब तो यही है न कि मैं भोजन ही न करूं।” डाक्टर ने उसको समझाते हुए कहा—‘नहीं भाई! मेरा ऐसा मतलब नहीं कि तुम खाओ ही न। मेरे कहने का मतलब यह है कि भोजन थोड़ा कम करो बस। यदि भोजन न करोगे तो भी परेशान रहोगे और भोजन ज्यादा करोगे तो भी परेशान रहोगे। इसलिए मैं कहता हूं कि कम खाओ।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

अर्थात् आहार, विहार, चेष्टा और कर्म—सभी युक्त होना चाहिए। मध्यवर्ती बरताव होना चाहिए तभी काम बनेगा।

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।

अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥

मध्य रास्ता से चलने से ही शांति मिलेगी। जीवन का गुजर तो करना ही है और जीवन गुजर का काम करने से बंधन नहीं बनता। ज्ञानी पुरुष को भी हल चलाकर अन्न पैदा कर लेना पड़े तो कर लेना चाहिए।

उसमें उसकी जीवन्मुक्ति में कोई कसर नहीं आ जायेगी। हल जोतना पड़े, खेत गोड़ना पड़े, यहां तक कि टट्टी-गोबर फेंकना पड़े तो भी कोई हर्ज नहीं है क्योंकि यह तो शरीर का काम है। यह पाप नहीं है। झाड़ू लगाना पाप नहीं है। काम करना पाप नहीं है लेकिन काम-धन्धा में ही रात-दिन उलझा रहे और कल्याण साधना का कार्य ही न करे तो कैसे बनेगा। इसलिए संतुलन होना चाहिए। जीवन गुजर भी होना चाहिए और आध्यात्मिक उन्नति के लिए साधना का प्रयास भी होना चाहिए।

साधु-महात्मा तो घर को छोड़कर विरक्त हो जाते हैं। उनको फुरसत ज्यादा रहती है और वे अपना काम अधिक सरलता से कर सकते हैं तथा समाज को भी सांत्वना दे सकते हैं। उनकी यह जिम्मेदारी भी है। गृहस्थ लोग घर में हैं उनको व्यवहार की जिम्मेदारियां ज्यादा हैं लेकिन वे केवल व्यवहार में ही डूबे रहते हैं तो भूल करते हैं। उनको भी चाहिए कि साधना का काम करें। अपनी पावरचार्जिंग के लिए सत्संग-ध्यान, मनन-चिंतन सबको करना चाहिए। वैसे तो कबीर साहेब ने कहा है—

संतो सहज समाधि भली।

गुरु प्रताप भयो जा दिन ते, दिन दिन अधिक चली।
जहं-जहं डोलों सो परिकरमा, जो कुछ करूं सो पूजा।
जब सोऊं तब करौं दण्डवत, भाव मिटावौं दूजा।
आंखि न मूदौं कान न रूधौं, कायाकष्ट न धारौं।
खूले नैन हंसि-हंसि पहिचानों, सुन्दर रूप निहारौं।
शब्द निरन्तर मनुवा राता, मलिन वासना त्यागी।
ऊठत-बैठत कबहुं न छूटे, ऐसी तारी लागी।
कहत कबीर सहज यह रहनी, सो परगट करि गाई।
सुख-दुख से इक परे परम पद, सो पद है सुखदाई।

इस पद में साहेब ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात कह दी है और वह है—जो कुछ करूं सो पूजा अर्थात् मैं जो कुछ करता हूं वह पूजा है। जीवन हमारा इतना पवित्र बनना चाहिए कि हम जो कुछ करें वह पूजा बन जाये, पवित्र बन जाये।

माताएं भोजन बनायें तो यह ध्यान रखें कि हम देवी-देवताओं की पूजा कर रही हैं। घर के जितने सदस्य हैं वे सभी देवी-देवता हैं। जब घर के सदस्यों को भोजन परोसो तो समझो कि हम देवी-देवता को भोग लगा रहे हैं। जब ऐसा भाव रखकर भोजन पकाया और कराया जायेगा तब वह भोजन बनाना पूजा बन जायेगा। इसी प्रकार झाड़ू लगाना, चौका लगाना, टट्टी फेंकना तथा ऐसे ही और भी जितने कार्य हैं अगर उनको पवित्र भाव से और सेवा समझकर किया जायेगा तो वे पूजा बन जायेंगे। अगर पवित्र भाव से किया जायेगा तो जीवन के सभी कार्य पूजा बन जायेंगे।

दुकान पर बैठकर सौदा बेचा जाये और यह समझा जाये कि जो ग्राहक दुकान पर आते हैं वे भगवान-भगवती हैं, देवी-देवता हैं और उनकी पूजा करने के लिए ही हम दुकान पर बैठे हैं तब दुकानदार का दुकान करना भी पूजा बन जायेगा और उसके द्वारा डांडी-पसंगा मारा न जा सकेगा। उसके द्वारा तब तौल-माप में गड़बड़ी न होगी। मिलावटबाजी भी नहीं की जा सकेगी। तब दुकानदार के द्वारा उचित पारिश्रमिक लेकर ही सौदा दिया जायेगा और इस प्रकार दुकान करना भी पूजा हो जायेगा। इसी प्रकार पवित्र भाव से करने पर जीवन की हमारी यावत् क्रियायें हैं सब पूजा बन जाती हैं।

अब कहीं ऐसा हो कि देवियों ने रोटी पकायी और खाने के लिए पुरुष आया तो क्रोध में उलझी रहें, वे थाली लेकर आर्यें और पुरुष के आगे गुस्से के मारे ठन से रख दें तो यह पूजा न होगी। इसलिए जरूरी है कि हमारा मन मधुर हो और घर के सभी सदस्य देवी-देवता समझे जायें। जो घर के सदस्य हैं उनको आप लोग देवी-देवता नहीं मानते हैं। आप लोग बाहर देवी-देवता मानते हैं यह ठीक नहीं है। पहले आप अपने घर के सदस्यों से शुरू करो। आपके घर में जो सदस्य हैं वे देवी-देवता हैं। फिर पड़ोसी हैं, वे भी देवी-देवता हैं और फिर संसार के सारे प्राणी देवी-देवता हैं। जिसका मन देवमय हो जाता है उसके सारे कर्म पवित्र हो जाते हैं।

चलते-फिरते प्राणियों में जो देवत्व नहीं देखता वह देवत्व कहां पायेगा। इसलिए साहेब कहते हैं कि मैं जो कुछ करता हूं वह पूजा है। जब मन पवित्र हो जाता है, वाणी पवित्र हो जाती है, कर्म पवित्र हो जाते हैं तब उसका पूरा जीवन पूजा बन जाता है और उसका पूरा जीवन मधु बन जाता है। उसी के लिए वेद के ऋषि कहते हैं—“मधुवाता ऋतायते” अर्थात् जो नियम से चलता है उसके लिए मानो चारों तरफ से मधु की वर्षा होती है। उसके जीवन में मानो आनन्द ही आनन्द है और उसी ने मानो संबल इकट्ठा किया है।

जीवन में आदमी रोते हुए जन्मता है, चिंता करते हुए जीता है और पश्चाताप करते हुए मरता है। यह जीवन की बहुत बड़ी असफलता है। रोते हुए जन्मना तो प्रकृति का नियम है। इसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। जब आदमी जन्मता है, तब वह बच्चा रहता है, बोध तो वहां है नहीं, इसलिए रोता है परन्तु चिंता करते-करते जीना और पश्चाताप करते-करते मरना यही हमारी असफलता है। हम चिंता करते हुए न जीयें। हम सुख से जीयें, हम निश्चित होकर जीयें और ऐसे जीयें कि मरते समय हमें पश्चाताप न हो।

विदुर जी ने अपने नीति वचन में कहा है कि दिनभर ऐसा काम करना चाहिए कि शाम को खाटपर बैठकर पछताना न पड़े। आठ महीने ऐसा काम करना चाहिए जिससे वर्षा में पछताना न पड़े, किंतु सुख से वर्षा का समय कटे। जवानी में ऐसा कार्य करना चाहिए कि बुढ़ापा सुखद हो और जीवन में ऐसा काम करना चाहिए कि मरती बेलामें पश्चाताप न करना पड़े।

जिसने अपने मन को शुद्ध नहीं किया है, जिसने अपने मन में राग-द्वेष बनाकर कूड़ा-कचरा इकट्ठा कर रखा है तथा अपनी आध्यात्मिक उन्नति का काम नहीं किया है, मरते समय उसको पश्चाताप करना है और चिंतित होना है। चिंता करना एक आदत है और चिंता अज्ञान से होती है। आदत और अज्ञान छूट जायें तो चिंता खत्म हो जाये।

कितने लोगों की चिंता करने की आदत होती है। एक आदमी था जो बारम्बार चिंता करता रहता था। वह जैसे घर में आये वैसे कहना शुरू कर दे कि पिताजी बूढ़े हो रहे हैं, पता नहीं वे कब मर जायें। उनका दशगात्र करना पड़ेगा। उसके लिए पैसा कहां से आयेगा। घर पुराना हो रहा है। उसे कभी न कभी बनवाना पड़ेगा। उसके लिए भी पैसे कहां से आयेंगे। लड़की बड़ी हो रही है उसकी शादी करना ही है, उसके लिए कहां से पैसा आयेगा। इस प्रकार वह चिंता किया करे। उसकी पत्नी उसको समझाया करे कि तुम चिंता मत करो, सब हो जायेगा लेकिन वह समझ न पाये और चिंता किया करे।

उसकी पत्नी ने सोचा कि यह चिंता करना ऐसे न छोड़ेगा। इसको दूसरे ढंग से समझाना होगा। एक दिन पति जब बाहर से आया तब पत्नी रोने लगी। पति ने पूछा—क्यों रो रही हो? क्या बात हो गयी? उसने बताया—मेरे ऊपर भारी विपत्ति पड़ गयी है।

पति ने पूछा—आखीर कौन-सी विपत्ति आ गयी है? कुछ तो बताओगी। मैं भी सुनूँ कि तुम्हें क्या परेशानी है?

तब पत्नी ने बताया—“आज एक महात्मा आये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि बेटी! अभी तुम तीस वर्ष की हो, पचास वर्ष और जीओगी और जब अस्सी वर्ष की होगी तब तुम्हारी मृत्यु होगी। मैं सोचती हूँ कि दो दीपक रोज जलाऊँ तो पचास वर्षों में कितने हजार दीपक जलाने पड़ेंगे। अगर पन्द्रह कपड़े रोज धोऊँ तो पचास वर्षों में कितने लाख कपड़े धोने पड़ेंगे। बीस बरतन रोज मांजूँ तो पचास वर्षों में कितने लाख बरतन मांजने पड़ेंगे। मैं तो मर जाऊँगी। यह हजारों आदमियों का काम नहीं कर पाऊँगी।”

पति ने उसको डांटा और कहा—“बेवकूफ! यह तो पचास वर्षों के दरम्यान में तुझे करना है। एक दिन में थोड़े ही करना है।”

पत्नी ने मौका पाया और कहा—“मैं आपको कैसे बेवकूफ कहूँ। लड़की की शादी करना, घर बनवाना,

पिता का दशगात्र करना यह भी तो समय-समय से ही करना है। कोई एक ही दिन में थोड़े करना है।” उसका पति बात समझ गया और चिंता करना छोड़ दिया। इसी प्रकार हमारे जीवन में भी जो होता है वह क्रमिक होता है। कोई भी समस्या बनती है तो धीरे-धीरे उसका समाधान भी मिलता है।

समय एक औषधि है। समय आने पर सबकुछ हो जाता है। हम फादिल में चिंता करते और पीड़ित रहते हैं। चिंता करने की जिसकी आदत होती है वह निरर्थक चिंता करता रहता है। अज्ञान चिंता का खास कारण है। किसी आदमी को रोटी नहीं मिली इसलिए वह दुखी हो, ऐसी बात नहीं है। बात तो यह है कि वह समझता नहीं है इसलिए दुखी है।

किसी को रोटी नहीं मिली इसलिए वह दुखी है तो उसका दुखी होना साधारण लगता है कि भाई! दो दिन रोटी न मिले तो दुखी होने का कारण है ही। क्योंकि एकदम से भूखे तो रहा नहीं जा सकता। इसलिए दरिद्रता दुख है किन्तु क्या रोटी न मिलने से ही लोग दुखी हैं। उससे तो शायद ही कोई दुखी हो और आज के जमाने में तो काफी कुछ सम्पन्नता बढ़ गयी है। आज शायद ही कोई हो जिसे रोटी न मिलती हो और उसके कारण वह दुखी हो। आज यही देखा जाता है कि ज्यादा खाने वाले ही दुखी हैं। रोटी-साग खाने वाले लोग कम दुखी हैं। मेवे-मलाई, रबड़ी खाने वाले लोग ज्यादा दुखी हैं। दुख का स्रोत बाहर नहीं है किन्तु दुख का स्रोत मन से ही फूटता है। मन को शोधा नहीं गया तो दुख होना है। इसलिए सम्बल करना है। अपने मन को शुद्ध करना ही जीवन का सम्बल है। मन की पवित्रता ही जीवन का सच्चा सुख है।

साहेब कहते हैं कि ऐसा उत्तम मानव चोला और सत्संग का ऐसा उत्तम बाजार पाकर भी जिन्होंने सम्बल नहीं किया, रास्ता का खर्च इकट्ठा नहीं किया, दैवी सम्पदा का अर्जन नहीं किया, पवित्र कर्मों द्वारा अपने संस्कारों का समुच्चय जिन्होंने नहीं किया, उसने जीवन को खो दिया क्योंकि पवित्र संस्कार ही हमारे जीवन के सम्बल हैं। वही आनन्द देते हैं।

जब हम बिस्तर पर होते हैं तो धन, घर, परिवार सब अलग रहता है और केवल मन ही हमारे साथ रहता है। जब हम रास्ते में चल रहे होते हैं तब सब कुछ अलग रहता है और मन हमारे साथ रहता है। चाहे हम अपनी ही कार में क्यों न चलते हों, बस में ही हम बैठे हों भले वह अपनी ही क्यों न हो, सब कुछ अलग ही रहता है। निकट कुछ रहता है तो वह है हमारा मन। हमारा मन ही हमारे ज्यादा निकट है। अब अगर मन ही में उलझन बनी है तब कार में बैठना, बस में बैठना, बिल्डिंग में रहना, धन और परिवार कुछ भी सुख न दे सकेगा। इसलिए असली सम्बल, असली सम्पत्ति, रास्ते का असली खर्चा मन की निर्मलता है, संस्कारों की निर्मलता है और बिना पवित्र कर्म किये संस्कार निर्मल हो नहीं सकते।

सद्गुरु कहते हैं कि ऐसा उत्तम मानव चोला और ऐसा सत्संग पाकर जिन्होंने अच्छी कमाई नहीं कर ली तो जब “झालि परे दिन आथये” झालि पड़ जायेगी, जब आंख से दिखाई कम देगा, कान से सुनाई कम देगा, चलने में पैर डगमगायेंगे और हाथ से कुछ किया न जा सकेगा तब “संबल कियो न जाय” तब कौन-सा संबल हो पायेगा? और वह दिन जल्दी ही आने वाला है जब विवशता हो जायेगी, असमर्थता हो जायेगी। इसलिए हमें सावधान हो जाना चाहिए क्योंकि “जीत की हार अभी बाकी है। धार अभी बाकी है पार अभी बाकी है।” यह एक भजन की पंक्ति है। मतलब है कि जवानी में जीत रहती है लेकिन बुढ़ापा में हार होती है।

आदमी जवान है तो वह पत्नी को डांटता है, बेटा-बहू को डांटता है, पूरे घर पर उसका वर्चस्व रहता है लेकिन जब वह बूढ़ा हो जाता है तो पत्नी कुछ सहायक नहीं रह जाती क्योंकि वह भी बूढ़ी होकर असमर्थ हो जाती है। बहू को ज्यादा कुछ कहेगा तो ठीक नहीं है। इसलिए बहू से भी दबना है और लड़के के लिए तो कुछ कह ही नहीं सकता। जिस घर को वह स्वयं बनाया है उसी घर में वह पराया-जैसा हो जाता है। जो शरीर जवानी में सबल था वह निर्बल हो जाता है

और चारों तरफ से असहाय-जैसा उसे लगता है। लेकिन यदि उसने अपनी आध्यात्मिक कमाई कर ली है, आध्यात्मिक संबल यदि कर लिया है तो बुढ़ापा तो मधु है।

कच्चा आम भले ही चिकना हो लेकिन उसमें खटास होती है और पके आम में भले ही सिकन हो, मीठा और कीमती होता है। इसी प्रकार जवान लोग, सुन्दर भले दिखें लेकिन अधकचरे होते हैं। बुढ़ापा ही मधु है। जवानी में जोश-खरोश और संस्कार भी ज्यादा उद्वेलित कर सकते हैं। बुढ़ापा में तो सारी संज्ञाएं शांत हो जाती हैं। अब साधना अपनी ठीक हो तो कितना बढ़िया हो। जिसने अपने जीवनभर पवित्र कर्म किया है और अच्छे-अच्छे संस्कार बनाये हैं उनका बुढ़ापा आनन्दमय बीतता है। मनुष्यों को चाहिए कि पहले अपने परिवार वालों के साथ अच्छा व्यवहार करे, अपने बहू और बेटों के साथ अच्छा व्यवहार करे।

जब भोजन करने बैठो तो कभी-कभार अपनी बहू की प्रशंसा भी कर दिया करो कि भाई, बहू बहुत बढ़िया भोजन बनाती है। इसी प्रकार कभी-कभार अपने लड़के की भी प्रशंसा कर दिया करो कि भाई, लड़का तो बड़ा लायक है, बड़ा योग्य है। ऐसा जब आप करेंगे तो बहू-बेटों के साथ आपका सम्बन्ध मधुर बना रहेगा। और कहीं उनकी आप आलोचना ही करते रहेंगे तब वे आपकी तरफ से बिदक जायेंगे और यह आपके हक में ठीक न होगा। इसलिए बुढ़ापा में आदमी को चाहिए कि वह अपने बहू-बेटों को कटु कहना छोड़ दे और मधुर बन जाये। और जो खास बात है, वह है आध्यात्मिक कमाई करना। अपना संबल बनाना, अच्छे कर्मों की कमाई यदि आपने की है तो आपके जीवन में आनन्द होगा।

इसलिए हमें, आपको और सभी को यह जरूरी है कि जीवन रहते-रहते और जब तक अच्छा समय है अपने मन को शोध कर उसके विकारों को दूर कर दें और अच्छे संस्कार उसमें भर लें। यही जीवन का संबल होगा, यही दैवी सम्पदा होगी और इसी से हमें अपने जीवन में सुख मिलेगा।

आदर्श जीवन

आजादी के लिए

उन दिनों महान स्वतंत्रता सेनानी और पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद देश के नामी वकीलों में गिने जाते थे। उनके पास मान-सम्मान और पैसे की कोई कमी नहीं थी। लेकिन जब गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन शुरू किया तो डा. राजेन्द्र प्रसाद ने वकालत छोड़ दी और अपना पूरा समय मातृभूमि की सेवा में लगाने लगे।

हालांकि अपने एक पुराने मित्र रायबहादुर हरिहर प्रसाद सिंह को दिये वचन के कारण उनके मुकदमों की पैरवी के लिए उन्हें इंग्लैण्ड जाना पड़ा। सीनियर बैरिस्टर अपजौन इंग्लैण्ड में हरिहर प्रसाद सिंह का केस लड़ रहे थे, जिनके साथ राजेन्द्र बाबू को काम करना था। अपजौन देखते थे कि राजेन्द्र बाबू सुबह से शाम तक अपना काम बिना कुछ बोले पूरी निष्ठा और लगन के साथ करते रहते हैं। वह उनकी सादगी और विनम्रता से बेहद प्रभावित हुए।

एक दिन किसी ने अपजौन को राजेन्द्र बाबू के बारे में बताया कि वह एक विनम्र एवं सफल वकील रहे हैं, पर अपने देश को आजाद कराने के लिए उन्होंने वकालत छोड़ दी और अब गांधी जी के निकटतम सहयोगी हैं।

अपजौन को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि ये इतने दिनों से मेरे साथ काम कर रहे हैं पर अपने मुंह से आज तक अपने बारे में कुछ नहीं बताया। अपजौन राजेन्द्र बाबू से एक दिन बोले—लोग सफलता, पद और पैसे के पीछे भागते हैं और आप हैं कि इतनी चलती हुई वकालत को ठोकर मार दी, आपने गलत किया। राजेन्द्र बाबू ने जवाब दिया—एक सच्चे हिन्दुस्तानी को अपने देश को आजाद कराने के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए। वकालत छोड़ना तो एक छोटी-सी बात है। अपजौन सुनकर अवाक रह गये।

किसान की सीख

जर्मनी के महान समाज सेवी ओबरलीन एक बार अपनी यात्रा के दौरान तूफान में फंस गये। तेज आंधी और ओलों ने उन्हें बुरी तरह परेशान कर दिया। वे मदद के लिए चिल्लाते रहे, लेकिन सबको अपनी जान बचाने को पड़ी थी, तो उनकी पुकार कौन सुनता। वे बेहोशी की हालत में नीचे गिर पड़े। कुछ देर बाद उन्हें अहसास हुआ कि किसी व्यक्ति ने उन्हें थामा है और सुरक्षित जगह पर ले जाने की कोशिश कर रहा है।

होश में आने पर ओबरलीन ने देखा कि एक गरीब किसान उनकी सेवा में जुटा हुआ है। ओबरलीन ने किसान से कहा कि वह उसकी सेवा के एवज में उसे इनाम देगा। फिर उन्होंने किसान से उसका नाम जानना चाहा। यह सुनकर किसान मुस्कुराया और बोला, मित्र बताओ, बाईबिल में कहीं किसी परोपकारी का नाम लिखा है? नहीं न, तो फिर मुझे भी अनाम रहने दो।

आप भी निःस्वार्थ सेवा में विश्वास रखते हो। मुझे इनाम का लालच क्यों दे रहे हो? वैसे भी पुरस्कार का लालच किसी को भी निःस्वार्थ सेवा करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। सेवा की भावना तो हमारे अन्दर से उत्पन्न होती है। ओबरलीन उस किसान की बातें सुनकर दंग रह गये।

वे मन ही मन सोचने लगे कि आज इस किसान ने एक पाठ पढ़ाया है, सेवा जैसा भाव तो अनमोल है। उसकी कोई कीमत नहीं लगाई जा सकती और सच्ची सेवा के लिए निःस्वार्थ होना जरूरी है। उन्हें अफसोस हुआ कि उन्होंने किसान को इनाम देने की बात कही। ओबरलीन ने किसान से कहा—अगर आपके जैसे इंसान हर जगह हो तो चारों तरफ खुशहाली और प्रसन्नता रहेगी।

प्रस्तुति—चेतन दास

*धन रहे न जोबन रहे, रहे गाम न ठाम।
कबीर जग में जस रहे, कर दे किसी काम।*